॥ श्रोः ॥

आवश्यक निवेदन

प्रिय पाठकवर्ग !

इस बात को सब हिन्दुस्थान वासी मानते हैं, कि हिन्दू सन्तानों को अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिए निज प्राचीन पुरुषों (ऋषि, महर्षि, राजा, महाराजाओं तथा अन्यान्य आदर्श चरित्र वालों) के सत्कर्मों का अवश्य अनुसरण करना चाहिये। हिन्दुओं के धर्मशास्त्र में मनु महाराज ने यही आज्ञा दी है—येनास्य पितरोयाता येनयाताः पितामहाः।

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यते। ४। १७८

कैसा अच्छा उपदेश है! सचमुच इस आज्ञा के अनुसार चरित्र धारण करने वाला धर्मपथ से भ्रष्ट नहीं होता और अवश्य मनमानी उन्नति कर लेता है। परन्तु इस बात को हम कार्य्यरूप में परिणत नहीं करते हैं, इसी कारण हम हमारी हिन्दू जाति को दिनोंदिन अधोगत ही देख रहे हैं— यह हर विषय में पिछड़ी हुई और असमर्थ दीख पड़ती है। क्या धर्म में, क्या नीति में, क्या बल में, क्या पराक्रम में, क्या विद्या में, क्या विज्ञान में, क्या आत्म-संयम में, क्या वैभव में, यश में, क्या दान में, क्या तप में, क्या योग में, क्या तत्वान्वेषण में, औदार्य में, क्या देशाटन में, क्या कला-कौशल में, क्या द्रव्योपार्जन में, क्या विवेचन में, क्या कर्मकांड में और क्या प्रभुता में-इसका तो ह्रास ही होता

जाता है, वृद्धि नहीं। इसके लिये आप मुझे यही कहेंगे कि—

उस समय (ऋषिकाल) में और इस समय (कलिकाल) में बहुत ही अन्तर हो जाने के कारण वे उपकरण (सामग्रियां) जो हमें सुलभ और सुखद एवं सह्य थीं अब दुर्लभ तथा असह्य एवं उपहास्य सी हो गई हैं। तो इसके उत्तर में मैं आपको यह निवेदन करूंगा कि समय की दूरी तो अवश्य है पर यह भी ध्यान रखिये कि कितने ही तो संसार के कर्म ऐसे हैं जो समयानुसार परिवर्तनोन्मुख होते हैं और कितने ही नहीं बदलते हैं। अपने धार्मिक और जीवन के सहायक सिद्धांत ऐसे क्षणभंगुर नहीं हैं, वे तो आपके आलस या मन की लोलुपता या विदेश की वायु के प्रबल झकोरों ने आपको भ्रांत और मुग्ध कर दिया, इस कारण उपेक्षित हो गये और होते जाते हैं। आप उनके गुणों को भूल से गये, इसलिये उनका उपयोग खो बैठे; अन्ततः यहां तक हो गया है कि आप पुराने नाम से भी चिढ़ और घृणा रखते हैं! इसलिये दुष्कर है अब प्राचीन पुरुषों के आदर्श कार्यों का अनुसरण करना, तथापि मैं भगवान् व्यासदेव की—

> अनगन्तुं सतांवर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
> स्वल्प मप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नाव सीदति॥

इस सुधा सूक्ति के अनुसार यह निवेदन किये बिना नहीं रहूंगा कि परिपूर्ण रीति से यदि पूर्वजों का अनुसरण न कर सकें तो यथा साध्य तो अवश्य ही करो। इसमें आपका बहुत कल्याण है। इस सन्मार्ग में चलता हुआ पुरुष कभी कुछ भी कष्ट नहीं पाता है। अब मेरी इस बात को मानकर

आप यही कहेंगे कि भाई ठीक है, पर अब प्राचीन पुरुषों के आदर्श कार्यों की शिक्षा की प्रवृत्ति ही नहीं है; अब तो फिर से हिन्दू बालकों को (जो भावी देशोन्नति के मूल स्तंभ हैं) वैसी शिक्षाएं देकर उनके हृदयों को वैसा ही बनाया जावे, तब यह कहीं संभव हो सकता है, सो आजकल की पाठन प्रणाली में वैसी पुस्तकें नहीं हैं। इसलिये कठिन है वैसा होना। इसके लिये हिन्दी भाषा में बालकोपयोगी पुस्तकें ऐसी हैं कि जिनमें प्राचीन प्रसिद्ध अनुकरणीय पुरुषों के आदर्श कर्म बताये जावें, वे भी बालकों के मनः प्रलोभन की युक्ति पूर्ण हों जिससे इनकी उनमें प्रवृत्ति हो, तब तो धीरे २ भारतवासी हिन्दू संतानों का सुधार हो सकता है।

इसके उत्तर में मैं आप महानुभावों के सम्मुख एक छोटी सी पुस्तक निवेदन करता हूं। इसमें आपकी चाही हुई बातें जो हिन्दी के छात्रों को उपयोगी होनी चाहियें, प्रस्तुत हैं।

इसमें यह प्रकार रक्खा है कि जिसके द्वारा हिन्दू जाति के बालकों को धर्म, नीति, बल, विक्रम, एकता, विद्या, पुण्य, सत्य, विनयादि गुण ग्रहण के और अधर्म, पाखंड, कलह, क्रोध, काम, लोभादि दुर्गुण त्याग के उपदेश देते हुए सामयिक कर्तव्य तथा प्राचीन पुरुषों का इतिहास और सनातन वैदिक धर्म की रक्षा करना सहज और मधुरता से सिखाया जा सकता है।

इस पुस्तक में १०८ पद्य हैं। उनमें प्रत्येक में एक महापुरुष की कथा प्रायः तीन चरणों में ही गुम्फित की है, और चौथे चरण को शिक्षा सूत्र बनाया है। प्रथम तो यही ढंग

(कविता में इतिहास की सत्ता) बालकों को अपनी ओर आकर्षण कर लेगा। तदनन्तर प्रति पद्य के नीचे उसकी वे कथायें (जिन के बारे में वह है) महाभारत रामायण भागवतादि धार्मिक मान्य ग्रन्थों के अनुसार सरल हिन्दी में लिखदी हैं। वे भी छात्रों को उन २ कर्मों में प्रवृत्त किये बिना न रहेंगी। फिर इन कथाओं के नीचे उनका सारांश है।

उन पुरुषों का पूरा परिचय उन के चरित्रों के फल तक पहुंचाता हुआ नितान्त ग्राह्य और संक्षिप्त रूप में दिया गया है, जिससे उन २ वृत्तांत के फल पर छात्रों का भाव शीघ्र ही दृढ़ हो सकता है। इत्यादि कारणों से यह पुस्तक वर्तमान समय के हिंदी पढ़ने वाले छात्रों को अत्यंत सरल प्रकार से धार्मिक, इतिहास ज्ञान के द्वारा सब प्रकार के आवश्यक कर्त्तव्य सहज ही सिखा सके, इस उद्देश्य से लिखी गई है।

समस्त भाषाओं की उत्पत्ति क्षेत्र हमारी संस्कृत भाषा के साहित्य में भी किसी समय ऐसे ही प्रकार से हमें शिक्षा दी जाती थी। इसके प्रमाण में महाकवि क्षेमेन्द्र की चारुचर्या और पंडित वर गुमानी कवि का उपदेश शतक प्रसिद्ध है। अन्य भी ऐसे उपयोगी ग्रंथ होंगे, परन्तु खेद है कि अब इस तरफ कोई पंडित प्रवृत्ति ही नहीं रखते। क्षमेन्द्र के पीछे संस्कृत पंडितों ने भी इधर ध्यान नहीं दिया। अस्तु, मैं तो यह कहता हूं कि यदि अब समयानुसार हिन्दी भाषा के धुरन्धर लेखक कवि ही इधर अपना ध्यान दें तो भी यह शिक्षा प्रचार का प्राचीन मार्ग सुवर्ण में सुगन्ध रखने वाला हो सकता है।

. . भारतचर्या के ढंग पर मैंने यह पुस्तक लिखी है, परन्तु इसके उदाहरणीय वृत्तान्त और फल उससे भिन्न ही हैं, वेहां नहीं लिये हैं। केवल अनुकार्य पुरुषों के नाम कहीं २ मिलते हैं, वे भी अनिवार्य होने से मिलते हैं। जैसे श्री रामचन्द्र और कृष्णचन्द्र हमारे अनुकार्य हैं और उनके भी। परन्तु उन ने (क्षेमेन्द्र ने) कार्य और फल और लिया है, मैंने और ही लिया है, इत्यादि। क्षेमेन्द्र और गुमानी के तो बहुत पद भावों से और कार्यों से भी मिलते हैं। ऐसा कवि प्रतिभा से सम्भव है। व्यास और वाल्मीकि का भाव अनेक स्थलों पर मिल जाता है; वैसे ही कालिदास, दंडी, भारवि आदि आदि कवियों की भी भावच्छायाएं कई स्थानों पर मिलती हैं। इसको सहृदय पुरुष ही समझते हैं। इसमें कोई हीनता नहीं हो सकती, तथापि मैंने मेरी प्रकृति विवश प्रायः भिन्न २ ही कार्य और फल नियत किये हैं।

इस तरह यह छोटी सी पुस्तक आप महानुभावों की सेवा में समर्पित कर आशा करता हूं कि आप इस मेरी लघु सेवा को सप्रेम अपनावेंगे और इस के लेखादि में त्रुटियां रह गई हों उन्हें सुधार कर पढ़ने की कृपा करेंगे।

यदि इस प्रकार को हिन्दी प्रेमी जनता ने अपनाया तो मैं ऐसे ही ढंग से स्त्री शिक्षा के भी १०० तथा १२५ पद्यों का एक संग्रह किसी सुचारु रूप में हिन्दी भाषा की सेवा में निवेदन करूंगा।

भवदीय—

श्री हरिः

एक नवीन आवश्यक

सूचना ।

प्रिय महाशय

किसी देश की समुन्नति और उसके भाषा साहित्य का यही सम्बन्ध है, जो धुंआ और अग्नि का तथा दुग्ध और घी का, वृक्ष और बगीचे का । अर्थात् बिना भाषा साहित्य की वृद्धि हुए देश समुन्नत नहीं हो सकता, इस कारण ही पुरुषों ने आवश्यकतानुसार अनेक संस्थाएँ भिन्न २ प्रान्तों में पुस्तक प्रकाशन के निमित्त खोली हैं और वे यथोचित रूप में हिन्दी माता की सेवाएँ भी कर रही हैं।

वास्तव में देश के लिये यह आदर्श कार्य है। इसका प्रभाव बहुत फैलता है और जनता का उपकार भी बहुत होता है। इस लिये जयपुर में भी जयपुर निवासी सेठ श्री विहारीलाल जी के सुपुत्र बाबू वासुदेव*प्रसादजी ने एक 'लघु पुस्तक माला' प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है।

---

* आप के घराने का महत्त्व और प्रतिष्ठा बहुत है। मारवाड़ी वैश्य जाति में आप के पूर्वजों को बड़ी प्रख्याति रही है । आप के

इस पुस्तक माला में उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। धार्मिक विरोध या मत मतान्तर, खण्डन तथा राज विरुद्ध नैतिक आन्दोलन विषय की पुस्तकों को यह संस्था स्वीकार न करेगी।

पूर्वज पितामह श्रीमान् सेठ नानक राम जी हुए। उनके पुत्र श्रीमान् सेठ पेमराजजी हुए। इनने अपने समय में ही वृटिश गवर्मेण्ट को पूर्ण सहायता अफगानिस्तान की लड़ाई के समय में प्रथम वार बत्तीस लक्ष ३२०००००) रुपयों और दूसरी वार ५२०००००) रुपयों और मवेसी इत्यादि द्वारा की थी, जिसके उपलक्ष्य में समय समय पर गवर्मेण्ट सरकार ने प्रसन्न होकर कई सार्टीफिकेट दिये हैं, उन में से, यहां स्थानाभाव के कारण दो एक साधारण सार्टीफिकटों की प्रतिलिपि करतेहैं। इससे आपको सब प्रकार परिचय होगा।

आप बड़े धार्मिक, सत्यप्रिय, ऋषि पुरुष थे। आप में सच्चा वैष्णव भाव पाया जाता था, क्यों कि निज जन्म भूमि नवलगढ में एक लक्ष्मीनारायणजी का विशाल मन्दिर आपके ही आग्रह से श्रीमान् सेठ नानक चंदजी ने बनवाया था. उसके चारों ओर बगीचा लगवाया है। आप स्वयं तप और त्याग में बढ़े चढ़े थे, ३५ तथा ३६ वर्ष की अवस्था में ही इतनी सम्पति के साथ गृहस्थाश्रम को त्याग चुके थे। मन्दिर के निकट ही उनका एक स्थान कचहरी के नाम से अब भी प्रसिद्ध है। उसी एकान्त स्थान में एक तख्त पर बैठे भजन में ही रत रहते थे। आप सिर्फ २॥ घण्टे ही निद्रा लेते थे। एक ही समय भोजन करते थे। भगवन्नाम संकीर्तन में

इसका उद्देश्य संस्कृत भाषा की अपूर्वता को हिन्दी में लाकर शिक्षा प्रचार करते हुए वेदान्त, भक्ति, योग, साहित्य, धर्म आदि उत्तम विषयों का प्रचार करना है।

निरन्तर लगा रहना ही अपना कर्तव्य मानते थे। और जहां २ इन दिव्य गुणों के अंकुर देखते थे, वहीं अपने प्रेम और प्रेरणा से दृढ़ता पैदा कर देते थे। लोग उन्हें शान्ति, दया और भक्ति तथा निश्छलता के आदर्श समझते थे। इस तरह जीवन सफल करते हुए ९० वर्ष की अवस्था में आप विष्णुलोक में पधारे।

इन ही महानुभाव के (वर्तमान) पुत्र श्रीमान् सेठ बिहारीलाल जी के चिरंजीव बाबू वासुदेवप्रसाद जी हैं। इनने हिन्दी साहित्य प्रेमी होने के कारण इस संस्था को नियत किया है।

(प्रतिलिपि सार्टीफिकटों की)

Resident Seetabuldee 3rd March, 18-7.

Tejram Pemraj and Jeynarain, are most respectable sahookars of Nagpore. They are three sons of the late Nanickram Sahookar, who, in his days did good service to the state, in times of trouble, and was held in the highest estimation by successive Residents, as the certificates in the possession of his sons testify.

यह पुस्तक इसकी प्रथम पुस्तक (पहला पुष्प) है।

इस लिये हिन्दी प्रेमी पुरुषों को चाहिए कि इस 'पुस्तक-माला' के स्थायी ग्राहक अवश्य बनें।

The sons have a firm at Nagpore, styled Tejram Pemraj; another at Jeypore, styled Tejram Jeynarain; a third at Indore, styled Pemraj Jeynarain; and a fourth at Calcutta, styled Jeynarain Lakhmichand.

Their family residence is at Nawalgurh, eighty miles west of Jeypore. During the late disterbances in India, I constantly received very valuable and timely information from Tejram, of the state of feeling in the city and province of Nagpore, and of course of events in Central, Western and Upper India; and found his counsels as valuable as his information.

The sons have also, like their father, evinced the greatest readiness at all times, and more especially in times of difficulty to undertake any business for Government in their line, such as supplying funds, contracting for carriage, cattle, etc., on reasonable terms, as much from a desire

इसके ग्राहकों को इसकी पुस्तकें पौन कीमत में ही दी जावेंगी और पोस्टेज भी न लिया जायगा।

---

to assist in promoting the public service, as with an eye to their own profit, and have always performed any business they have undertaken punctually, and in all respects satisfactorily: Tejram is a remarkably shrewd, intelligent and well informed man, and the firms of the three brothers may be consulted and employed with confidence and advantage in any business.

I have given this certificate to Tejram, in recognition of his valuable services, (confidentially rendered to me) during the late disturbances.

(Sd.) G. PLOWDEN,
Commissioner of Nagpore.

27th April, 1858.

The firm of Tejram Pemraj, sahookars of Nagpore, are desirous of making purchases at the sales of Prize property at Lucknow, through their Gomasta, Tansukh Rae, and have requested me to certify to their respectability with a view

यह माला उन लोगों को बिना मूल्य पुस्तकें देगी जो ग्राहक होने में असमर्थ हैं। इसके लिये उनको किसी २ प्रतिष्ठित पुरुषों की सम्मति अवश्य भेजनी होगी। देशोपकारक संस्थाओं को भी यह माला अपनी प्रकाशित पुस्तकें भेंट किया करेगी।

---

to their bills being received in payment of their purchases. I have accordingly much pleasure in stating, that the firm is a highly respectable one, and that jointly with another firm at this place, it has lately supplied the Nagpore Treasury with thirty-two (32) lac of Rupees, in exchange for bills on Calcutta and Bombay, at a time when the money was very much needed for the public service, and there was no other means of obtaining it. In this transaction the firm supplied to the stipulated instalments, always long in advance of the fixed dates, and thereby rendered a further great service to the Government. In firm purposes that their Gomashtah shall give hundees at sight on Calcutta, Bombay or Nagpore, as may be desired. I should not hesitate to take their bills to any amount, but they do not require that they should be taken in excess of a lac of Rupees.

(Sd.) G. PLOWDEN,
Commissioner of Nagpore.

इसका उद्देश्य व्यापार करना या यों कहिये कि इस मिष से धन कमा कर लाना नहीं है। यह तो लागत के दाम बराबर रहे, तब तक भी अपने स्वरूप में से (स्थायी कोष में से) भी ६ वां हिस्सा देशोपकारक कार्यों में देना विचार चुकी है।

Seetabuldee, Nagpore, 30th September, 1859.

The bearer of this by name Tejram, is the head of the Sahookaree firm of Tejram Pemraj at Nagpore, with branches at Joypore, Calcutta and Bombay. He and his brothers Pemraj and Jeynarain, the two other members of the firm, are most respectable sahookars, and Tejram is especially intelligent and enterprising. Their father Manickram, rendered the state good service in the days of the old Residency, at a time of need, during the war with Affghanistan, some sixteen years ago; and Tejram rendered excellent service at Nagpore, during the late disturbances, in supplying funds at various times, in connections with another sahookars to the amount of fifty-two (52) lacs of Rupees, and also in furnishing early and authentic information of occurrences in all parts of India.

He is now about to leave Nagpore on a pilgrimage to Allahabad, Benares and Jagannath;

इसके ग्राहक होने वालों को दोनों हाथ लड्डू मिलना सम्भव है। एक ओर से तो अपूर्व पुस्तकें और एक ओर परस्परया देश सेवा (परोपकार) इसके लिये प्रत्येक हिन्दी प्रेमी हिन्दू को इसका ग्राहक होना आवश्यक समझते हुए आज ही निम्न लिखित पते से पत्र व्यवहार करना चाहिये।

पत्र व्यवहार का पता—

मैनेजर,

श्रीकृष्ण स्टोर्स, जयपुर।

---

and I trust that the Authorities enroute, should he have occasion to apply to them, will show him the attention and civility as his respectability and good services entitle him to expect.

(Sd.) G. PLOWDEN,

Commissioner and Agent Governor General.

॥ हिन्दी शिक्षा रत्नावली ॥

॥ श्रीः ॥

साहित्य महोपाध्याय आशुकवि कविभूषण

पण्डित श्रीहरि शास्त्री विरचित–

। हिन्दी शिक्षा रत्नावली ॥

ओंकारसार विज्ञान–तत्व सर्वस्व वेद का ।
चिदानन्दमय स्वच्छ तेज की भावना करूँ ॥१॥

कवि श्रीहरि शर्मा मैं बाल–बोध–प्रदायिनी ।
मनोज्ञ हिन्दी भाषा में शिक्षा रत्नावली लिखूँ॥२॥

सुवृत्तत्न्छवि धारती हुई,
गुथी हुई है उपदेश सूत्र से ।
धरी हुई बालक कंठ में यह,
करो सदा व्यक्त विवेक सम्पदा ॥३॥

सच्चिदानन्द परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि सुन्दर वृत्त (छन्द और पद्य तथा सदाचार) रूप रत्नों की छवि को धारण करने वाली और उपदेश रूप सूत्र [सूत्र और सूत] से गुथी हुई यह शिक्षा रत्नावली बालकों के कण्ठ में धारण की हुई सदा उनकी विवेक रूप सम्पत्ति को प्रगट करती है ।

जिस प्रकार रत्न-माला पहिने हुए बालक को लोग सम्पत्ति वान जान जाते हैं, वैसे ही इस शिक्षा-रत्न-माला को कण्ठ में धारण करने वालों को लोग विद्वान (ज्ञान के धनी) मान लेंगे । यह भावार्थ हुआ ।

प्रभात ही में उगते हुए रवि,
प्रताप को पूर्णतया प्रचार के ।
सदा चमत्कार भरें त्रिलोक में,
विभात के पूर्व जगो सदा सखे ॥४॥

प्रति दिन सूर्य भगवान प्रभात काल में उदित होते हैं और अपने प्रकाश से सब दिशाओं को प्रकाशित करते हैं, तथा सब लोक में चमत्कार भरते हैं । चमत्कार यही है कि सूर्य के उगते ही सब मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणी वर्ग अपने २ काम में लग जाते हैं । अन्न वनस्पति आदि भी परिपाक पाती हैं,

इत्यादि। इसी प्रकार भावुक (होनहार) बालकों को प्रभात से पहिले ही निद्रा छोड़कर जग जाना चाहिये, तथा निज कर्तव्य में लग जाना चाहिये। वह समय अमृतवेला कहलाती है। विद्या पढ़ने तथा ध्यान पूजा करने वालों के लिये तो यह समय एक सिद्ध रसायन है, जो बल, पुष्टि, नैरोग्य, प्रतिभा, स्मृति, कान्ति आदि गुणों का देने वाला है। इस कारण सूर्य के उदय को उदाहरण समझ कर प्रभात के पहिले निद्रा छोड़ जग जाने का अभ्यास करो।

आयुर्वेद के तत्वज्ञों ने भी इस समय में जग जाना आयु, वृद्धि और नैरोग्यता का कारण माना है।

शुभाशिषें ले निज तात मात से,
लगा हुवा भी पशु-मांस वृत्ति में।
संसार में व्याध विवेकवान् हुआ,
माता पिता की नित वन्दना करो॥४॥

महा मुनि मार्कण्डेयने युधिष्ठिर को कहा कि एक धर्म व्याध नाम का कसाई मिथिलापुरी में हुआ था, वह माता पिता का अनन्य भक्त और श्रद्धालु था। वह उनको ही इष्टदेव समझ प्रति दिन सब कार्यों से पहिले माता पिता का पूजन तथा स्तुति प्रार्थना प्रणाम प्रदक्षिणा कर उनसे आशीर्वाद ले पीछे निज

कुल क्रमागत मांस की दूकान करता था। इस मातृ-पितृ भक्ति के प्रभाव से उसे दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ और वह परम विवेकी होगया। यहां तक उसका ज्ञान बढ़ा हुआ था कि एक कौशिक नाम ब्राह्मण तपस्या के घमण्ड से एक पतिव्रता को अतिथि सत्कार विलम्ब से करने के कारण क्रोध युक्त होता हुआ साध्वी स्त्री से तिरस्कृत किया गया। तत्पश्चात् उस स्त्री ने उसके गर्व चक्षुओं को खोला और कहा कि यदि आपको ज्ञान प्राप्त करना हो तो मिथिला को जाकर धर्म व्याध से कुछ ज्ञान प्राप्त करो। ब्राह्मण उसी समय मिथिला पुरी में पहुंचा। धर्म व्याध ने उस ब्राह्मण का पूजा सत्कारादि कर अपने आने का तथा उस साध्वी स्त्री का वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् उस ब्राह्मण को सदाचार, धर्म-योग आदि विज्ञान का उपदेश देकर पूर्ण महात्मा बना दिया। उपदेश से प्रसन्न होकर कौशिक ने धर्म व्याध को घोर कर्म करते हुये भी तत्व ज्ञान होने का कारण पूछा। पश्चात् धर्म व्याध ने उसे अपने घर लेजाकर अपने माता पिता को (जो सिंहासन पर बैठे देवताओं के समान पुजे हुये शोभित हो रहे थे) दिखाकर कहा कि यही मेरे इष्ट देवता हैं; यही मेरे उपदेशक तथा गुरू हैं। इनकी सेवा भक्ति से ही मुझे यह कुछ बोध हुआ है। यह सब इनके आशिर्वादों का फल है कि ऐसी नीच वृत्ति करने पर भी धर्म ज्ञान होने के कारण धर्म व्याध कहलाता हूं। यह सुन कौशिक ब्राह्मण उसे धन्य २ कहकर प्रशंसा कर अपने घर आया।

[यह कथा महा भारत के वन पर्व में २०५ वें अध्याय से २१६ वें अध्याय तक वर्णन की गई है।]

बालकों को माता पिता की प्रेम पूर्वक सेवा करनी चाहिये, जिससे ज्ञान, मान और सुख सम्पत्ति मिले।

देवेन्द्र ने जा ग्रत में त्रिमात के,
निहार के दोष अशौच शीघ्र ही।
सुगर्भ छेदा उदर प्रविष्ट हो,
स्वदेह को नित्य पवित्र ही रखो।५।

पहिले देव दानवों की लड़ाइयों में ब्रह्मा विष्णु महेश्वर की सहायता पाकर देवता विजय प्राप्त कर लेते थे। अन्त में दानवों की हार ही होती थी। यह देख दानवों की माता दिति को बहुत कष्ट होता था। वह रात दिन यह विचार किया करती थी कि एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करूं जो इन्द्र को हराकर तथा मार कर स्वर्ग का राजा होजाय। इस विचार से वह निज पति महा मुनि कश्यपजी की सप्रेम और निश्छल सेवा विशेपता से करने लगी। एक दिन अपने पति को प्रसन्न जानकर उपर्युक्त वर मांगा। महा मुनि कश्यपजी ने उसे एक व्रत बताया और कहा कि यदि तू इस व्रत को विधि पूर्वक पुर्ण कर लेगी तो मनोवांछित संतान उत्पन्न होगी। यह कह उसको उस व्रत के नियम तथा साधन-विधि पूर्णतया वर्णन कर दी। यह व्रत १ वर्ष तक करने का था। दिति ने उत्साह पूर्वक इस व्रत को करना आरम्भ कर दिया। यह समाचार जब इन्द्र को विदित हुआ, तब

तो वह कूट नीति के मार्ग पर आ अपनी सौतेली मा दिति के दोषों पर ध्यान रखता हुआ गुप्त रूप से वहां रहने लगा। इस कपट को दिति न पहिचान सकी। एक दिन (जब व्रत पूर्ण होने में कुछ ही दिन बाकी थे) दिति झूंठे मुख सो गई। झूंठे मुंह रहने का इस व्रत में निषेध था। इस दोष को देख दिति को अशुद्ध समझ इन्द्र ने सूक्ष्म (वायू) रूप से उसके मुख द्वारा पेट में जाकर गर्भ के ७ टुकड़े कर दिये। बस दिति को बहुत कष्ट हुआ और व्रत भी पूर्ण न हो सका।

[यह कथा श्री मद्भागवत के छठे स्कन्ध में १८ वें अध्याय में वर्णन की है।]

इस का सिद्धांत यह समझना चाहिये कि कारण बिना कभी अशुचि (मलिन) मत रहो। अशुद्ध दशा में ही अनेक भूतादि उपसर्ग भी हो जाते हैं और शरीर आरोग्य नहीं रहता।

दुर्ग्राह से ग्रस्त गजाधिराज ने,
स्वचित्त देके हरि पाद पद्म में।
तरी विपत्सद्गति लाभ भी किया,
सुचित्त होके भगवान को भजो ॥६॥

त्रिकूटाचल पर्वत पर एक बहुत बड़ा रमणीय तालाब है। गर्मी के समय घाम से तपा हुआ एक गज राज अपने यूथ

सहित निज बच्चों को और करनियों को संग लिये प्यास से अकुला कर, जल ढूंढ़ता हुआ उस तालाब की ओर पहुंचा। सरोवर को देख यह प्रसन्न होकर परिवार सहित उसमें उतरा। पानी पीकर विहार कर रहा था कि एक ग्राह ने उसे खाने की इच्छा से पैर पकड़ लिया। तब तो दोनों जोर करने लगे, किन्तु स्थल चारी गज का बल जल में कम होता है तथापि निज परिवार के भरोसे यह मद मत्त हाथी अपने को ग्राह से छुड़ाने की भरसक कोशिश करता रहा। निदान जब उसके प्राण सङ्कट में आगये तथा वह डूबने लगा तब तो शुद्ध अन्तःकरण से दीनदयालु भगवान् श्रीहरि का स्मरण करने लगा और जोर से भगवान् का नाम पुकारने लगा। ज्यों ही भक्ति पूर्ण भाव से उसने नाम पुकारा, त्यों ही भगवान् श्री हरि गरुड़ को छोड़ अति वेग से उस तालाव पर गये और यह दिखाते हुए कि मैं मेरे भक्तों को इस प्रकार आपत्तियों से छुड़ाता हूँ, वे (श्रीहरि) उस तालाब में कूद गये और झट से गज के गले में बांह लपेट उसे जल से बाहर निकाल लिया और ग्राह को चक्र से काट दिया। गजराज को यों आपत्ति से बचा कर सद्गति दी।

[यह कथा भागवत के आठवें स्कन्ध २-३ अध्याय में है।]

प्यारे बालको ! स्थिर चित्त होकर नित्य प्रेम से भगवान् का ध्यान करो, जिससे वे समय पर तुम्हारी रक्षा करें तथा तुम्हें सुबुद्धि दें

न्हाके समङ्गाख्य पवित्र तीर्थ पै।
कहोड का पुत्र तनूविकार को॥
खो पाप के साथ पवित्र होगया।
सुतीर्थ पै स्नान अवश्य ही करो॥ ५॥

उद्दालक मुनि के शिष्य कहोड़ मुनि से सुजाता नाम की पत्नी से अष्टावक्र का जन्म हुआ था। यह गर्भ में ही पिता के शाप से आठ प्रकार कुटिल होने के कारण अष्टावक्र हुए। इनके पिता को जनक राजा की सभा के एक विद्वान् वन्दी ने शास्त्रार्थ में जीत कर पानी में रख छोड़ा था। वह जिसे जीत लेता था उसे पानी में ही रखता था–यह उसने प्रण कर लिया था। अष्टावक्र को बचपन में (जब तक ये विद्या पढ़ते रहे) माता ने यह बात मालूम नहीं होने दी। एक दिन जब ये पढ़ लिख कर पूर्ण धुरन्धर विद्वान हो गये थे, इन्हें किसी कारण वश माता ने पिता का सब वृत्तांत कह दिया। वेदान्त वर्णन में और योग तथा सांख्य में वे एक ही विद्वान् थे। इनने पिता का हाल सुनते ही मिथिला पहुंच कर जनक की सभा में वन्दी को शास्त्रार्थ के लिये आव्हान कर ऐसा पराजित किया कि वह फिर इनके आगे शिर न उठा सका, और लज्जा के मारे जमीन कुरेदने लगा। जनक राजा ने भी इनकी गम्भीर विद्वत्ता देख इनके पैरों में शिर झुका दिया और वन्दी का निग्रह कर दिया। तब ये अपने पिता को जल में से निकलवा कर प्रणाम कर साथ ले निज स्थान को आने लगे। मार्ग में समंगा (जिसे मधुविला भी कहते हैं) नाम नदी दीख पड़ी। तब कहोड़ मुनि

ने इनको उसका माहात्म्य सुनाया और कहा कि यह वह तीर्थ है जिस पर इन्द्र ने स्नान कर ब्रह्म हत्या से छुटकारा पाया है; इस कारण बेटा तुम इसमें स्नान करो। पिता की आज्ञा मान अष्टावक्र ने समंगा में स्नान किया। उसी समय इनके शरीर का टेढ़ापन सब देह में से जाता रहा और देह इनका सुन्दर और सीधा हो गया। फिर ये यहां से पिता के साथ घर पर आगये।

[महाभारत वनपर्व १३२ से १३४ वें अध्याय तक]

इस कारण बुद्धिमानों को चाहिये कि यात्रा में या प्रसंग वश भी मार्ग में आये हुए तीर्थ स्थानों पर स्नान दर्शन पूजनादि कर्म कर के ही आगे बढ़ें। कारण कि ऐसे तीर्थों पर ही महात्मा योगीराज, मुनि, सिद्ध, देव आदि की गुप्त मूर्तियां रहती हैं। वहां जाने से शान्ति प्राप्त होती है और कल्याण होता है।

स्वाध्याय ही तप है मुख्य लोक में।
हुए इसी से मुनि याज्ञवल्क्य भी॥
संसार में मान्य सुधर्म शासक।
स्वाध्याय आवश्यक जान साधिये॥६॥

स्वाध्याय वेद के पढ़ने और उसके अर्थ ज्ञान को कहते हैं। यह भी एक बड़ा तप है। स्वाध्याय के ही प्रभाव से अपने पूर्वज ऋषि मुनि बड़े २ तत्ववेत्ता और सिद्ध हुए हैं। उन महात्माओं का ही प्रभाव है कि आज भी भारतवर्ष विद्या का भंडार

कहा जाता है। स्वाध्याय के पूर्ण प्रेमी याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ, उद्दालक, पैल, वाष्कलादि अनेकों मुनि हुए हैं; तथापि एक यहां याज्ञवल्क्य का ही इतिहास संक्षेप से लिखा जाता है।

ये मुनि श्रेष्ठ वैशंपायन से यजुर्वेद पढ़े हुए थे। इनको वेद पढ़ने में बहुत अभिरुचि थी और ये इसका पूर्ण ज्ञान रखते थे। एक दिन इनके गुरु के शिष्यों ने गुरु के प्रतिनिधि रूप में कोई व्रत किया था। यह उन्हें आप करने को आग्रह करने लगे। गुरु ने क्रुद्ध हो इनको पढ़ी हुई विद्या वापिस देने को कहा तो इनने सब मन्त्र वमन कर निकाल दिये और वहां से चल दिये। तब गुरु ने इनकी वमन में अग्नि को चिनगारियों के समान तेजोराशि रूप मन्त्रों को देख आश्चर्य में आकर इनका प्रभाव समझ उन मन्त्रों को ग्राह्य मान अन्य शिष्यों को कहा कि तुम तीतर होकर इन्हें चुग जाओ। शिष्यों ने वैसा ही किया। तब यजुर्वेद की एक तैत्तिरीय शाखा और हुई। इधर ये मुनिराज सूर्य की आराधना करने लगे। इनके भक्ति पूर्वक उपस्थान से सूर्य प्रसन्न होकर बोले कि तू वर मांग। तब इनने अन्य कुछ न मांग कर यजुर्वेद का स्वाध्याय मैं आप से करूं—यही चाहा। सूर्य ने इन्हें स्वयं यजुर्वेद पढ़ाया, तब से परम प्रसिद्ध होगये। फिर तो ऐसे विद्वान् हुए कि इनने संसार के लिये कानून का ग्रन्थ लिखा जो आज तक भी सर्वत्र मान्य है (याज्ञवल्क्य स्मृति) और भी इनने अनेक ग्रन्थ रचे हैं, जो संसार के उपकारी हैं। ऐसा इनका स्वाध्याय का प्रेम था। स्वाध्याय ही के प्रभाव से ये ऐसे हुए हैं।

[भागवत १२ वां स्कन्ध]

प्यारे बालको! वेद पढ़ने में (स्वाध्याय में) मन लगाओ। धर्म का मूल वेद ही हैं। इनकी आज्ञा का पालन करो-यही तुम्हारे आदर्श बनने का कारण होगा।

महा तपस्या कर कौशिक स्वयं।
सुरासुरों के वहुमान्य पूज्य हो॥
ब्रह्मर्षि का भी पद पा चुके बड़ा।
लोगो! तपस्या बल पास में रखो॥७॥

कौशिक विश्वामित्र का नाम है। यह मुनि कुशिक राजा के पुत्र थे। इनकी तरुणावस्था में एक दिन आखेट खेल कर ये सैना सहित वशिष्ठ मुनि के आश्रम के आगे होकर आ रहे थे। वशिष्ठ मुनि ने अतिथि सत्कार पाने के लिये इन को निमन्त्रण दिया। वे वहां ठहर गये। मुनि वशिष्ठ के पास कामधेनु रहती थी। वह ऐसी गौ थी, जो अभिलिपित वस्तु प्रदान करती थी। उसके प्रभाव से विश्वामित्र तथा उसकी समग्र सेना का यथेष्ठ सत्कार किया गया। इसको देख कर विश्वामित्र विस्मित हुये और विचारने लगे कि कहां से ये पदार्थ जो हमें हमारे बड़े नगरों में भी दुर्लभ हैं, इस ब्राह्मण को प्राप्त हुए। इतने में किसी जानकार ने कामधेनु गौ का सब वृत्तान्त विश्वामित्र से कह सुनाया। तब तो विश्वामित्र को लालच छाया और गौ को छीन लेने की दिल में ठानी। अन्त में वशिष्ठ से उसे मांगी। उसकी अभिलाषा स्वीकृत न होने पर विश्वामित्र ने उससे लड़ाई ठानी। वशिष्ठ ने अपने ब्रह्म तेज

से उसको व उसकी सेना को हरा दिया। तब तो विश्वामित्र बड़े आश्चर्य में पड़ गये और मान लिया कि ब्रह्म बल ही बल है, शारीरिक बल ब्रह्म बल को नहीं पा सकता। पस वे ब्रह्म बल पाने की अभिलाषा से वन में घोर तपस्या करने लगे। तब तो ब्रह्मा जी कई बार आये और अनेक वर दिये तथा ब्रह्मर्षि की पदवी दी, किन्तु विश्वामित्र ने इतने पर भी तपस्या से विश्राम नहीं लिया, क्यों कि उसने पूरी तरह से विचार कर रक्खा था कि जब तक वशिष्ठ अपने मुंह से मुझे ब्रह्मर्षि न कह देंगे तब तक मैं तपस्या से विश्राम नहीं लूंगा। अन्त में इसकी तपस्या ऐसी तीव्र हो गई और इसका तेज ऐसा हो गया कि वशिष्ठ स्वयं अपने मुंह से इन्हें ब्रह्मर्षि कहने लगे। समस्त ऋषिगण भी ब्रह्मर्षि कहने लगे। यह तपस्या का प्रभाव है।

[वाल्मीकि रामायणे]

प्रिय बालको! तपस्या को भी अपना परम कर्तव्य समझ कर बढ़ाते रहो, क्यों कि असम्भव भी तपस्या से सम्भव हो जाता है। जैसे विश्वामित्र राजा के पुत्र थे और उन्हें राजर्षि की पदवी थी, किन्तु कठिन तपस्या के प्रभाव से राजपुत्र को न मिलने वाली ब्रह्मर्षि की पदवी इनको मिली।

व्यायाम को नित्य निबाहता हुआ।
त्रिलोक में बालि महा बली हुआ॥
लोगो! सदा ही बल वृद्धि के लिए।
व्यायाम के साधन में लगे रहो॥ ८॥

वालि एक प्रसिद्ध महा बलवान् वानर हो गया है। यह त्रेता युग में रामावतार के समय में था। वह व्यायाम का प्रेमी था। टहलने में इसको बहुत रुचि थी। इसने इतना बल बढ़ा लिया था कि रावण मय दुन्दिभि जैसे वीरों को वह लीला के साथ ही पछाड़ देता था। इसे टहलने का इतना अभ्यास गया था कि जिस दिन चाहता उसी दिन एक साथ ४ प्रहर में भूमि की परिक्रमा लगा लेता था। इसका यह नियम था कि प्रात:काल संध्या समय से पूर्व ही चल कर पूर्व समुद्र तट पर संध्या कर मध्यान्ह के समय पश्चिम समुद्र तट पर मध्यान्ह संध्याकर सायंकाल को फिर पूर्व समुद्र तट पर आकर संध्या कर लेता था। इसके बल पर बड़े २ देव दानव अचम्भा करते थे। इसको "संग्राम में शत्रु का आधा बल खींच लेने का" वर भी प्राप्त था, इस कारण वह सदा ही सब से चौगुना बलवान रहता था। इसी कारण रामचन्द्र ने इसे सम्मुख न मार वृक्ष की ओट में मारा।

इस काल में इसके सदृश दूसरा कोई वीर ही न था। देखिये, ऐसा दृढ शरीर बन जाने का कारण केवल व्यायाम ही था।

[वाल्मीकीय उत्तर कांड ३४ वां सर्ग]

प्यारे बालको! इस लिये तुम भी नित्य व्यायाम किया करो। व्यायाम से शरीर पुष्ट होता है, पाचन शक्ति बढ़ती है, अङ्गों में फुरती आती है तथा शरीर दृढ और आरोग्य रहता है।

सुयज्ञ ही विश्व अनादि धर्म है।
गयादि राजा इस के प्रभाव से॥
सुकीर्ति पाके सुर लोक को गये।
रहो निभाते हवनादि कर्म को॥ ९॥

धर्मात्मा राजा गय राजर्षि बड़े नामी हो गये हैं। इनने यज्ञ बहुत श्रद्धा के साथ किये थे। यहां तक इन्होंने यज्ञ किये थे कि पृथ्वी का कुछ ही भाग इनको यज्ञ वेदियों से बच गया था! इनके यज्ञ में इन्द्र सोमरस पी पी कर मस्त हो गया था। जिस स्थान पर इन्होंने अधिक यज्ञ किये थे, वहां अब भी गयशिर नामक प्रधान तीर्थ महीधर पर्वत पर है, जहां पयोष्णी नदी बहती है। वहीं ब्रह्मसर तीर्थ है। इनके यज्ञ में अन्न के पर्वत के पर्वत दान किये गये थे। घी, दूध, दही की नदियां बह चलीं थीं। इस यज्ञ प्रिय राजा ने ब्राह्मणों को बहुत दक्षिणा दी थी तथा ब्राह्मणों को भोजन से तृप्ति करा दी थी।

यहां तक कि ब्राह्मण गाया करते थे कि क्या ब्राह्मणों को अब भी जीमने की इच्छा है! यज्ञान्त काल में सब दान दे चुकने पर भी अन्न के २५ पर्वत शेष रह गये थे।

अपार यश भागी गय ने जैसा यज्ञ में दान किया, ऐसा किसी ने उस काल में नहीं किया। इस यज्ञ कर्म के प्रभाव से वह इन्द्र लोक में पहुंचा और अनन्त ऐश्वर्य भोगने लगा।

[महाभारत वन पर्व के ६५ वें अध्याय तथा १२१ अध्याय में भी वर्णन की गई है।]

इस कारण हवनादि जो अनादि काल से सनातन धर्म का मूल है, नित्य करना चाहिये। यज्ञ करने वाला मनुष्य कान्ति, बल, तेज तथा आरोग्यता पाता है।

प्रभात बासी दधि माष रोटियां।
खाते हुए सत्कवि हर्ष की मति॥
सुतीक्ष्ण भी मन्द हुई तुरन्त ही।
विद्यार्थियो! तामस भोज को तजो॥१०॥

कवि श्रेष्ठ हर्ष जो रत्नावली नाटिका के कर्त्ता कहे जाते हैं बचपन में किसी महात्मा सिद्ध मान्त्रिक पुरुष के शिष्य हो सरस्वती का चिन्तामणि मन्त्र जपने लगे। उससे इनकी प्रतिभा नितान्त तीक्ष्ण हो उठी। तब तो इनको कविता का इतना अभ्यास हो गया था कि कल्पना वे अतीव ऊँची करते थे। उनने १०० सर्गों में एक नैषधीय चरित नाम का काव्य लिखा। वह बड़े २ विद्वानों के भी बहुत कम समझ में आया। उस काव्य को राजानक मम्मट ने देखा तब वे इनकी माता को जो (उनकी बहिन होती थी) जाकर कहने लगे कि इसकी बात ही समझ में नहीं बैठती है। यह जो लिखता है न मालूम किस सम्बन्ध से लिख डालता है। इस प्रकार असम्बद्ध बातों से लोग इसके लिये अनेक कुत्सित कल्पनाएं करते हैं। क्या मालूम इसका मस्तिष्क खराब हो गया। यह अर्ध विक्षिप्त तो

नहीं है, इत्यादि । इस कारण तुम इसकी बुद्धि या प्रकृति (मानुष प्रकृति के अनुसार) करने के लिये इसे प्रभात में ठंडी (बासी), रँधी उडद की दाल बासी रोटी बासी दही खिलाओ। इसकी माता ने यह बात मान ६ महीने बराबर इन बासी पदार्थों का सेवन कराया तो इनकी बुद्धि मन्द हो गई। एक दिन ये कलेवा कर रहे थे तब मम्मट ने जा पूछा कि क्या कर रहे हो ? तब उसने संस्कृत में उत्तर दिया कि " अशेष शेमुषी मोषंमाष मश्नामि केवलम् " समस्त मत को चुराने वाली उड़द की बासी दाल खाता हूं। मम्मट ने फिर थोड़े दिन वही खिलाने का उपदेश दिया। कुछ दिन पीछे इनकी कही हुई व लिखी हुई कल्पनाएं तत्कालीन विद्वानों के समझ में आने लगीं और वे इनकी सराहना भी करने लगे। ठीक है जब तक जो पुरुष जिस बात को नहीं समझ लेता है तब तक चाहे वह कितनी ही अच्छी हो प्रशंसा नहीं कर सकता। फिर कुछ समय पीछे मम्मट भट्ट ने इनका लिखा वह शतसर्गात्मक नैषधीय चरित दिखलाया और कहा कि इसे लगाओ या हमें समझाओ। तब उसे पढ़ पढ़ कर स्वयं भी नहीं समझने के कारण काटने लगे। उन अलौकिक कल्पनाओं को इनने काट छांट कर साधारण कल्पनाएं अर्थात् मानुषी मस्तिष्क में समाने वाली रखदीं तो १०० सर्गों में से २२ सर्गात्मक काव्य रह गया। वह अब भी वर्तमान है जो उच्च साहित्य की कक्षाओं में पढ़ाया जाता है। जब वे उस काव्य को ठीक कर मम्मट के पास लाये उस समय वे काव्य प्रकाश का सप्तम उल्लास लिख चुके थे, उसे देख रहे थे। मम्मट ने इनके २२ सर्ग के काव्य को देख कर कहा कि भाई हर्ष ! मैं सच कहता हूं तुम थोड़े दिनों पहिले भी इसे लाकर मुझे देते तो मेरा उपकार करते। कारण कि मैं दोष

प्रकरण लिख रहा था। उसके लिये उदाहरणों की मुझे बहुत खोज न करनी पड़ती। मैं चाहे जिस दोष के उदाहरण तुम्हारे काव्य में से लेकर लिख देता कि 'यथा नैषधे' तो मुझे सुभीता होता। अब तो मैं वह काम कर चुका हूं। इसका यह सार हुआ कि ये तुम्हारी कल्पनाएँ गुणस्वल्पा और दोषपूर्णा हैं। यह कथा वृद्ध-कर्ण परम्परा प्राप्त सुनी, उसी में से जहाँ तक इस पद्य समर्थन में साक्षेप थी, उतनी लिखी है। इस कारण छात्रों को चाहिये कि वे तामसी भोजन न किया करें।

अप्रासंगिक होने के कारण यह बात हमने नहीं लिखी है कि यह श्री हर्ष राजा का लिखा नैषध है कि किसी ब्राह्मण कवि का है, रत्नावली श्री हर्ष की लिखी है कि धावक की। इसके विषय में हमने पूर्ण गवेषणा कर जो सिद्धान्त निकाला है वह अन्य समय पाठकों को निवेदन करेंगे। इस पुस्तक से इस एक ही पद्य पर इतना अप्रासंगिक लेख विरुद्ध पड़ जायगा, इसलिये इसे यहीं छोड़ते हैं।

यहां मनु व्यास पराशरादि।
विद्वान् नाना रच पुस्तकों को॥
स्वदेश के पूर्ण हुए हितैषी।
विद्या पैढा देश सुधार हेतु॥११॥

महाराज मनु और व्यास देव और महर्षि पाराशर ये तीनों अद्वितीय पुरुष हो चुके हैं। इन्हीं के बनाये हुए कानून

(नियम) और पुराणेतिहास तथा धर्म सदाचारादि की व्यवस्थाओं पर संसार की परिस्थिति अवलम्बित है। इनमें मनु महाराज ने व्यवहार शिक्षा ऐसी नियत की है कि जिससे युगान्त काल तक भी संसार उऋण नहीं हो सकता ! इनके (लॉ) कानून शास्त्र को मनुस्मृति कहते हैं। यह धर्म शास्त्र कहलाता है,इसके नियमों के अनुसार अब भी राजनैतिक नियम बनते हैं। हर्ष की बात है कि इस काल में पाश्चात्य देशों के लोगों ने भी इनका बहुत आदर किया है। वे मानते हैं कि मनु एक (लॉ) कानून का बनाने वाला विचित्र मस्तिष्क रखता था; आचार, राजनैतिक व्यवहार, दण्ड आदि की उचित व्यवस्था बाँधी है। और व्यासदेव की क्या प्रशंसा लिखें कि जिन्हें भारतवर्ष के सनातन धर्मानुयायी लोग भगवान् का अवतार मानते हैं। इनने १८ पुराण और एक महाभारत बनाया है सब से प्रथम एक वेद था, उसके इन्होंने चार भाग कर लोगों का परोपकार किया है। तथा पाराशर मुनि ने धर्म शास्त्र स्मृति और ज्योतिष शास्त्र के अनुपम ग्रन्थ लिख कर भारत वर्ष ही का क्या भू-मण्डल मात्र का असीम उपकार किया है।

इस कारण प्यारे बालको ! विद्या पढ़ते हुए तुम इस बात को अपना लक्ष्य बनालो कि हम देश के उद्धार एवं परोपकार के लिये विद्या पढ़ रहे हैं, उदर के लिये नहीं, तो सब प्रकार से देश का आपका कल्याण हो जाय, इसमें सन्देह नहीं।

श्रीकृष्ण सान्दीपनि नाम विप्र की।
अनेक सेवा कर शीघ्र पा चुके॥
समस्त विद्या गुरु से विनम्र हो।
सभक्ति सेवा करते हुए पढ़ो॥ १२॥

भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने भी नर लीलानुसार लोक-शिक्षा के लिये एक सान्दीपनि नाम के विद्वान् ब्राह्मण को अपना विद्या गुरु बनाया। वे उन गुरुजी के पूर्ण भक्त होकर विद्या पढ़ते थे। इनने उनकी सेवा अनेक प्रकार से की थी। उनमें से दो सेवाएँ यहां लिखते हैं एक तो अलौकिक सेवा और एक लौकिक सेवा। अलौकिक सेवा तो यह है कि एक बार गुरुजी के पुत्र (समुद्र पर स्नान करते हुए को) पांचजन्य नाम दानव लेगया और मार डाला। गुरु को खिन्न देख कर भगवान् ने कारण पूछा, तब गुरु ने सब बात कह सुनाई और प्रार्थना की कि मैं तुम्हें जान गया हूं तुम आदि पुरुष हो, सर्व समर्थ हो, इस कारण मुझे यही दक्षिणा दो कि मेरा पुत्र जीवित होजाय। उनके ऐसे करुण वचनों पर भगवान् को दया आगई और झट ही अपने योगबल के द्वारा समुद्र के पास जा उसे तिरस्कृत कर उससे पूछने पर पांचजन्य नाम दानव लेगया है—यह पता लगा कर समुद्र में कूद पांचजन्य के साथ लड़ उसे मारकर यमराज के पास पहुंच कर उसे कहने लगे कि मेरे गुरु पुत्र को सौंप। यमराज ने शास्त्र नियमानुसार नम्र निवेदन किया, पर इनने न मान कर गुरुपुत्र को मृत्युलोक से मंगवाकर शीघ्र ही गुरु जी को सुखी किया। यह तो इनके पढ़ चुकने के समय की बात है।

दूसरी कथा लौकिक सेवा की यह है—जब यह पढते थे उस समय गुरु पत्नी ने इन्हें ईंधन लेने को जंगल में भेजा। ये भगवान उसी समय अपने साथी ब्राह्मण सुदामा जो इनके साथ पढता था जंगल में ईंधन लेने गये। वहां इन्हें दिन छुप गया और मूसलधार पानी बरसा। सब दिशायें अन्धकार से छा गईं। उस घोर भयङ्कर समय में वे दोनों जङ्गल में ही एक रात्रि भर एक वृक्ष पर रहे। सुबह गुरुजी इनको ढूंडते हुये चिन्ता करते हुये कि दोनों बालकों ने रात्रि कहां बिताई और कैसे इस वर्षा को सहा होगा! इन्हें पाकर बोले "भाई! तुमने मेरे लिये बहुत परिश्रम उठाया, मैं तुम पर प्रसन्न हूं, तुम्हारी पढी विद्या तुम्हें सहस्र गुणी होगी और सफल होगी" यह सुन भगवान् बोले "महाराज! कष्ट सहना शरीर का धर्म है! गुरु सेवा किस सुभागी के भाग्य में लिखी है। हम तो आज आपकी इस छोटी सी सेवा से अपने को धन्य मानते हैं। और आप हमें क्षमा करें कि हम ईंधन लेकर सायंकाल घर नहीं पहुँचे।" यह सुन प्रसन्न हो उदार भाव और पूर्ण भक्ति देख कर अनेक आशीर्वाद दे उन्हें घर भेजा।

[यह कथा गर्ग संहिता के मथुरा खण्ड के अध्याय नवें में और भागवत में प्रसिद्ध है]

बालको! यह तुम्हें ध्यान देने की बात है कि तुम अपने गुरूकी तन मन और धन से पूर्ण सेवा कर के उन्हें प्रसन्न करो। उनके प्रसन्न होने पर तुम्हें सब बातें सुलभ होंगी। देखो कृष्ण भगवान् ने कैसा २ कष्ट सहा, कैसी सेवा की है, तो भी यही कहते थे कि हमने क्या सेवा की है। गुरु सेवा बिना विद्या

सफल नहीं होती है। यों देखा जाय तो भगवान् को क्या पढना बाकी था और क्या सीखना था। परन्तु उनने लोगों को यह सिखलाने ही के लिये ऐसी कठिन गुरु भक्ति से मुख नहीं मोड़ा और प्रकृति का नियम भी मृतक पुत्र को वापिस लाने से बदल दिया। सच है गुरु के लिये जितना उपकार करें उतना ही कम है, क्यों कि वह हमें विद्या पढ़ा कर ऐसा ही ऋणी बना देता है और ऐसा उपकार करता है कि हम उन्हें दक्षिणा जो देवें या देते हैं, वह उस ज्ञान-वैभव के आगे कुछ भी नहीं !

दुर्दान्त वृत्रासुर से दुखी हुए।
त्रिलोक के हेतु दिया दधीचि ने ॥
देवेन्द्र को स्व प्रिय देह शीघ्र ही।
तजो तनू भी उपकार के लिये ॥

[दानवीर महर्षि दधीचि का आख्यान महाभारत में वनपर्व के १०० वें अध्याय में है]

ये महामुनि नितान्त उच्च कोटि के विद्वान और तपस्वी और परम उदार हुये थे। एक वार वृत्रासुर और इन्द्र में महा संग्राम हो रहा था। उसमें इन्द्र वृत्रासुर से कई वार पराभव भी पा चुका था और उस प्रचण्ड पराक्रमी दानव के कुकर्मों से तीन लोक के देव और ब्राह्मण घोर कष्ट पाने लगे। जब

देवताओं में किसी प्रकार भी उस दानव के वध करने की शक्ति न रही, तब सब देव मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और सब हाल कह सुनाया। तब विधाता ने इन्द्र से कहा कि मैं तुम्हें एक उपाय बताता हूं तुम उसे करो तो यह कष्ट दूर हो सकेगा, अन्यथा नहीं। वह प्रयत्न यह है कि सरस्वती नदी के उस पार महर्षि दधीचि रहते हैं वे तपस्या में लगे हैं उनकी हड्डियां वे दे दें और तुम विश्वकर्मा से उनका वज्र बना कर वृत्रासुर से संग्राम कर उसे उस वज्र से मारो तो मर सकता है, अन्यथा नहीं। इस लिये तुम सब देव मिल कर जाओ और उदार महर्षि दधीचि से याचना करो। वे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे। इन्द्र ने विष्णु भगवान को और सब देव समुदाय को साथ ले दधीचि के पास जाकर नम्र प्रार्थना कर सुनाई। दधीचि भी इनकी बात सुन कहने लगे कि देवताओ! यदि इस पञ्च भौतिक शरीर से (जो एक न एक दिन गिरने ही वाला है) तुम्हारा सब का तथा जगत् का उपकार होता है और दुःख दूर होता है तो मुझे इस शरीर को रख और क्या लाभ लेना है, यही परम लाभ है कि मेरी हड्डियों द्वारा त्रैलोक्य का कण्टक दूर हो। यह कहकर समाधि लगाके महर्षि आनन्द के साथ ब्रह्म रन्ध्र के द्वारा अपने तेज को शाश्वत ब्रह्म ज्योति में लीन कर गये। देवताओं ने उनकी बहुत प्रशंसा कर धन्य २ करते हुये उनके शरीर का अन्त्य संस्कार कर हड्डियां ले विश्व कर्मा से वज्र बनवा वृत्रासुर के साथ घोर संग्राम किया। और उसमें इन्द्र ने हड्डियों के वज्र प्रहार से उस वृत्रासुर का वध कर जगत् को सुखी किया तथा स्वर्ग का निष्कण्टक राज्य किया।

इस कारण प्यारे बालको ! तुम भी पराये उपकार के लिये तन मन धन से यथा शक्ति चेष्टा करते रहो। उपकार से यश और पुण्य दोनों मिलते हैं।

जाके सभी सगर के सुत भूमि नीचे।
योगी महा कपिल को कहके कुवाक्य ॥
पा दृष्टि तेज, जल भस्म हुए तुरन्त।
छेड़ो न साधु जन को करके कुचेष्टा ॥

सूर्यवन्शी महाराजा सगर के ६०००० साठ हज़ार पुत्र थे। वे बड़े बलवाले थे। एक बार सगर के १०० वें यज्ञ के घोड़े को इन्द्र गुप्त रूप से चुरा ले गया और कपिल मुनि के आश्रम में बांध कर स्वयं चुपचाप अपने स्थान को चला गया। महाराजा सगर ने उसकी बहुत तलाश की पर जब न मिला तब अपने सब पुत्रों को कहा कि तुम्हारे रहते भी मेरे यज्ञ के अश्व का पता न चले तो मुझे तुम्हारी बलवाली भुजाओं से क्या लाभ ? सब के सब जाओ, और घोड़े का पता लगालाओ। यह सुन कर वे ६०००० पुत्र साथ ही निकल पड़े। चारों ओर घोड़े की खोज करते हुये उनने पाताल लोक में (पृथ्वी के नीचे भाग में) कपिल के आश्रम में बंधे अश्व को पहिचान लिया। और एक तरफ़ कुछ ही दूर महर्षि कपिल को समाधि मग्न देखा, तब तो इन्हें बहुत क्रोध हुआ और सब उसे मारना चाहते

थे पर वह ध्यान में स्थित था। इस लिये पहिले गाली गलौज से सचेत करने की इच्छा से महामुनि को न पहचान कर उसे घोड़े का चोर समझा और चाहे जैसे बकने लगे। इनका कोलाहल सुन महर्षि ने समाधि खोल इनकी तरफ दृष्टि डाली तो बात की बात ही में ये सब के सब भस्म की ढेरियां हो पड़े! बिना विचारे ही इन सब ने उस महात्मा योगिराज को छेड़ की सो इनकी यह दशा हुई और यज्ञ का फल होना भी दूर जा पड़ा।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में ४० वें सर्ग में है।]

इस कारण प्रत्येक पुरुष को चाहिये कि महात्मा साधु योगिराजों से छेड़छाड़ या बकवाद आदि कुचेष्टा न करनी चाहिये। भलाई तो होती सो होती है पर हानि तुरन्त हो जाती है।

पी वारुणी को नल कूबरों ने,
निर्लज्ज हो नारद से कुशाप।
पाके, मही में तरुयोनि भोगी,
कभी न सेओ मदिरा नितान्त॥ १५॥

यक्षाधिराज कुबेर के दो पुत्र थे। एक नलकूबर दूसरा मणिग्रीव। एक दिन वे दोनों ही मदिरा पीकर नशे में घूमते हुए अप्सराओं को संग लिये कैलास पर्वत पर मन्दाकिनी

गंगा के तीर पर जा इस प्रकार जल विहार करने लगे कि जैसे २ हाथी हथनियों के साथ जल क्रीडा करने लगे हों। मतवाले होने के कारण इनको अपने आपे का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। ये अश्लील काम करने लगे। नंगे होगये, स्त्रियों को भी नंगी कर दिया। कुछ ही देर के पीछे उधर से नारद जी आ निकले, इन्हें देख स्त्रियों ने तो झट से कपड़े पहिन लिये और लज्जा के मारे नम्र हो गई; परन्तु इन दोनों मतवालों ने कुछ भी लज्जा न की और ज्यों के त्यों ही अश्लील व्यवहार करते रहे। नारद जी ने इनको इस दुर्व्यवस्था में देख विचार किया कि इन ऐश्वर्य के अन्धों को कुछ दण्ड देना चाहिये, जिससे ये दुर्व्यसन से भी छुट जावें और इनका कल्याण भी हो। यह समझ नारद ने क्रोध प्रकट कर इनको झिडक कर कहा "अरे मदान्धो! तुम इस पवित्र गंगा नदी में यह अश्लील कर्म करते हो और नग्न हो रहे हो, मुझे देखकर भी जड़ की तरह आचरण करते हो, इस कारण तुम दोनों वृक्ष बन जाओ।" यह शाप सुनते ही वे होश में आये और नारद से प्रार्थना करने लगे। तब नारद ने यह कहा कि तुम्हें वृक्ष तो होना ही पड़ेगा। मेरा शाप मिथ्या नहीं होता, परन्तु जब कृष्णावतार होगा, तब भगवान् के द्वारा तुम्हारा उद्धार हो जायगा।

[यह कथा श्री मद्भागवत के दशमस्कन्ध में १० वें अध्याय में है।]

इसका भावार्थ यह समझो कि मदिरा आदि नशे बहुत ही बुरे हैं। तुम अपने मन को इनके पास भी मत जाने दो, क्यों कि ये नशे एक बार लग जाने के पीछे बढ़ते ही हैं,

छुटते नहीं हैं और मनुष्य की प्रतिभा, बल और तन्दुरुस्ती को नष्ट कर देते हैं, इस लिये शौकिया तो इनका सेवन कभी मत करो। औषधादि की बात दूसरी है, परन्तु उसमें भी यथा प्रयत्न तो वैसी ही औषधि लो कि जिनमें इनका सम्बन्ध न हो।

प्रवृत्त हो रावण की गिरा में,
मारीच होके छल से कुरङ्ग ।
श्रीराम से नष्ट हुआ तुरन्त,
रखो कभी दुर्जन से न मैत्री ॥ १६ ॥

सीता हरण के लिये रावण दण्डकारण्य में आकर अपने मित्र मारीच को यों समझाने लगा कि देखो मित्र इन दो तपस्वियों के पास कैसी मन मोहनी सुन्दरी स्त्री है। इसे मैं प्राप्त करना चाहता हूं, और इनको बल का भी गर्व है, यह भी दूर हो जायगा। देखो इन दोनों ने मेरी बहन का रूप कुरूप कर दिया और विराधादि राक्षसों को जो मेरे जातीय तथा सहायक थे, मार डाला। इनको इस प्रकार की सजा भी देनी चाहिये और अपना मनोरथ भी पूरा करना चाहिये। इसके लिये इस समय तुम मेरे सहायक हो तो मैं मेरे मनोरथ को सहज ही में पूर्ण करलूं। मारीच ने पूछा वह क्या ? तब वह बोला कि ये दोनों शिकार के शौकीन हैं। तुम एक सुन्दर अद्भुत मृग बन कर इनके आगे होकर निकलो तो वह तुम्हारे पीछे होंगे। उनको तुम दूर ले जाना। पीछे से मैं मेरा प्रयोजन सिद्ध

कर लूंगा। यह सुन कर मारीच ने रावण को समझाया तो रावण क्रोध कर उसे दबा कर कहने लगा कि यदि तू मेरा कहना नहीं करेगा तो मैं तुझे मार दूंगा। और यदि यह काम बना देगा, यहां का राज्य धन तुझे दूंगा, इत्यादि बातों में विश्वास दिलाकर फुसला लिया। मारीच को उस दुष्ट की बातों में विश्वास रख कर सुन्दर मृग बनना पड़ा। और वह सुवर्ण मय रङ्ग का हरिण बन राम लक्ष्मण और सीता के आगे होकर कूदता हुआ खेलता हुआ चलने लगा। सीता ने उसे देख राम से प्रार्थना की कि इस विचित्र मृग को लाओ। राम भी उसके पीछे धनुष ले चल दिये, वह उन्हें बहुत दूर ले गया। तब रामचन्द्र ने थोड़ी ही देर में उसे अपना निशाना बना कर बेध डाला। वह भूमि पर गिर कर परलोक पहुंच गया।

[यह प्रसिद्ध कथा वाल्मीकि रामायण के अरण्य काण्ड में है]

इस का सार यह हुआ कि दुष्टों के साथ मित्रता भी न रखनी चाहिये; क्यों कि वे दुर्जन यदि तुम्हें अपना सा न बना सकेंगे तो तुम्हें बिगाड़ तो जरूर ही देंगे—इसमें सन्देह नहीं।

कपोत को भीत निहार बाज से,
स्व माँस भी दे शिवि ने बचा लिया।
प्रपन्न आपद्गत जीव मात्र पै,
दया सदा ही करते रहा करो ॥ १७ ॥

महाभारत के वन पर्व में १९७ वें अध्याय में मार्कण्डेय मुनि और युधिष्ठिर का सम्वाद है कि एक समय दयालु राजा शिवि के पास एक कबूतर बाज से डरता हुआ आपड़ा और बोला कि महाराज मैं शरणागत हूं मुझे बचालो। राजा ने उसे शरणागत जान अभय किया और पास में बिठा लिया। इतने में एक बाज उड़ता हुआ वहां आकर बोला कि राजन् यह क्या अनुचित करते हो, जो मेरे भक्ष्य को नहीं छोड़ते हो। यह कबूतर मेरा भोजन है मुझे इसे खा लेने दो। यह सुन राजा ने उसे उत्तर दिया कि तू कहता है वह सच है, परन्तु मैं मेरे धर्म को (जो शरणागत की रक्षा करना है) कैसे छोड़ दूं? यह मेरे से अभय किया गया है अब तू इसे नहीं मार सकता, क्यों कि अब यह मेरा होगया है। फिर बाज ने कबूतर लेने को महाराजा को समझाया परन्तु राजा ने यही कहा कि यह नहीं हो सकता कि यह कबूतर दे दूं। हां यह सकता है कि इसके एवज में तुम मुझ से और मांस ले सकते हो। तुम्हें तो भूख ही मिटानी है फिर तुम इस कबूतर के लिये इतनी हठ क्यों करते हो? यह सुन बाज बोला कि अच्छा महाराज! यदि आप अन्य मांस देना चाहते हैं तो अपना खुद का मांस काट कर इस कबूतर के बराबर तोल दो! राजा ने यह बात सुनते ही हर्ष के साथ छुरे से अपनी ज़ांघ में से मांस काट कर तराजू के एक पलड़े में कबूतर को और दूसरे पलडे में उस मांस को रख दिया। कबूतर का पलडा भारी देख फिर मांस काट कर चढ़ा दिया। फिर भारी देख फिर शरीर में से मांस काट कर रख दिया! फिर भी कबूतर को भारी हो देख एक दम उस दया-निधान महाराज ने अपना शरीर ही उसके तोल में रख दिया!!

अर्थात् स्वयं उस मांस के पलडे में बैठ गया और बोला कि लो, मुझे सबको इसके बराबर तोल कर अपनी भूख मिटालो। राजा की इस-दयालुता पर बाज प्रसन्न हो कर, धन्य २ कह प्रशंसा करने लगा। यह बाज इन्द्र था और कबूतर अग्नि था। ये दोनों शिवि की दया धर्म की परीक्षा करने के लिये आये थे। पर राजा की इस असीम दया को देख कर उन दोनों को विस्मित होना पड़ा।

प्यारे बालको! जीव मात्र पर दया रखो, दया ही धर्म का मूल है।

रहे सभी पाण्डव वीर भृत्य हो,
विराट के गेह सुगुप्त वास में।
सही व्यथाएँ बहु भाँति धैर्य से,
न धीर हों कायर दुःख काल में ॥१८॥

द्रोपदी के साथ पांचों पांडव अज्ञात वास के लिये मत्स्य देश के राजा विराट् के यहां जा दास होकर रहे थे। युधिष्ठिर चौपड़ खिलाने पर रहा। इसका नाम वहां "वैयाघ्र पद" और "कंक" था। महाबली भीम वहां रसोइया होकर रहे। इनने अपना नाम वहां बल्लभ रखा था। द्रोपदी सैरन्ध्री होकर विराट् की रानी सुदेष्णा के पास रही। अर्जुन बृहन्नला नाम रख कर उस राजा की लड़की को नाच गान

सिखाने पर नौकर रहे थे। नकुल वहां घोड़ों पर अध्यक्ष (अस्तबल का दरोगा) होकर रहा, उस समय अपना नाम इसने ग्रन्थिक रखा। और सहदेव गो संख्य का नाम बनाकर इस राजा की गोशाला पर हाकिम नियत किया गया। उस समय इनने निज धर्म के पालन के लिये बड़े २ कष्ट और अपमान भी सहे, पर अधीर न हुए तो अन्त को मनोरथ पूर्ण ही हो गया और कुछ लाभ भी हुआ। वहां द्रोपदी पर आसक्त हुए कीचक ने उसके निषेध करने पर भी राज सभा में उसकी शिकायत कर विराट् ने उसे लातों से मारी। युधिष्ठिर आदि पांचों भाइयों ने इसे सह लिया और कुछ न कहा। युधिष्ठिर के एक दिन चौपड़ खेलते समय सत्य कहने पर विराट् ने पासे को मुंह पर मार दी, जिससे नाक से रुधिर बहने लगा। युधिष्ठिर ने यह सह लिया और कुछ न कहा। और निज धर्म का पालन करते ही रहे। द्रोपदी को विराट् ने निकाल देने को भी कह दिया था, पर इस समय धर्म जान उसने अपमान सहकर भी १३ दिन जो बाकी थे, उनमें वहीं रहने को उसने क्षमा मांगी, इत्यादि।

[इनकी कथा महाभारत के विराट् पर्व में है।]

धीर पुरुषों का यही लक्षण है कि वे आपत्ति काल में घबराते नहीं हैं।

निहार रूप द्रुपदात्मजा का,
कामन्ध हो कीचक दुष्ट बुद्धि ।
मारा गया कोपित भीम द्वारा,
कुदृष्टि डालो न पराङ्गना पै ॥१६॥

राजा विराट् की सुदेष्णा रानी के पास रहती हुई द्रोपदी पर (जो सैरन्ध्री के वेष में थी) मोहित हो कीचक चाहने लगा कि किसी प्रकार सैरन्ध्री से अपना मेल हो । इस विचार से उसने अपनी बहिन सुदेष्णा से कहा कि तू इसे मेरे पास भेज दे तो मैं अपना काम बनालूं । यह बात मान कर एक दिन सुदेष्णा ने सैरन्ध्री को कीचक के पास सुरा लाने भेजा । वह गई । तब उसे कीचक ने अकेली जान बहुत फुसलाया और बहुत समझाया, पर द्रोपदी ने उसकी एक बात भी न सुनी और झट वहां से लौट आई । उस समय निषेध कर जाती हुई द्रोपदी को कीचक ने यह कहा था । कि देख इसका परिणाम ठीक न होगा । तू मेरे वचन को मान ले, इसमें तेरी भलाई है । पर उसने कुछ न सुना । तब दूसरे दिन कीचक ने विराट् राजा की सभा में सैरन्ध्री की शिकायत सुनाई और उस पर राजा को क्रुद्ध करा कर उसे वहां बुलवाया और लातों से पीटा । इस दुःख से दुःखित हो द्रोपदी ने भीम को उत्तेजित किया और कहा कि इस दुष्ट को मारो, नहीं तो मैं विष खालूंगी । तब भीम ने उसे कहा कि तू इससे मिलकर राजा के नृत्य घर का संकेत करले और कहदे कि जब लड़कियां नाच कूद कर निपट जांयगी तब

रात में नाच घर में कोई न रहेगा, उस समय तुम वहां अकेले आओ तो मैं तुमसे मिलूं। वह इस बात को कामान्ध होने के कारण बिना कुछ भी विचार किये मान लेगा और वहां आ जायगा। तब मैं वहां गुप्त हो बैठा रहूंगा और इसे मार दूंगा। तू कुछ भी चिन्ता न कर। सैरन्ध्री ने वैसा ही कीचक को कह कर नाच घर में रात को बुला लिया। भीम वहां पहले ही जा छुपे। कीचक को आते देख उसने उस नाच घर में इस प्रकार बुरी रीति से उसका प्राण हरण किया, जैसे सिंह किसी छोटे मृग को खिला २ कर मारे। फिर सैरन्ध्री को बुला कर दिखाया कि यह वह कीचक है, जो तुम्हें चाहता था। द्रौपदी ने उसे देख कर ठोकरों से ठुकराया और यह प्रसिद्ध किया कि देखो कीचक ने मुझपर कुदृष्टि डाली थी, इस कारण मेरे रक्षक गन्धर्वों ने आकर नाच घर में इसे मार दिया है। सब लोग सुन कर कीचक की दशा देख आश्चर्य में आ सैरन्ध्री को सराहना करने लगे।

[यह कथा महाभारत के विराट् पर्व में कीचक वध नाम के अन्त पर्व में है।]

इस कारण प्यारे बालको! पर वनिता पर कभी कुदृष्टि न डालो, ऐसा करना महा पाप है।

संभोग के हेतु हुई उपस्थिता,
देवाङ्गना को तज व्यास पुत्र ने।
न ध्यान छोड़ा अमृतत्व के लिये।
स्व इन्द्रियों को वश में रखो सदा॥२०॥

गर्भ योगी श्री शुकदेव जी को वैराग्य में उत्कृष्ट प्रेम था। और भक्तिरस के ये महामुनि पूर्ण भण्डार थे। एक बार ये ध्यान मग्न बैठे हुये थे। इनको मोहित करने के लिये रंभा नाम की एक अप्सरा इनके पास आकर इन्हें मुग्ध करने लगी और शृंगार रस के परिपोष करने वाले वचन सुनाती रही। तब शुकदेव जी ने वैराग्य की पुष्टि करने वाले वचन सुनाकर उसके मत का खण्डन किया। बहुत समय तक वह हाव भाव कटाक्ष आदि अनेक काम चेष्टाएं दिखाती हुई काम के मार्ग (भोग विलास) का मण्डन करती रही कि जिस पुरुष ने इस प्रकार की तरुणी स्त्री का सेवन न किया उसका जन्म व्यर्थ ही गया। यों परस्पर संवाद करते हुए भी शुकदेव जी के मन पर रम्भा की किसी भी चेष्टा ने अपना प्रभाव नहीं डाला। सब व्यर्थ ही हुईं। तब तो रम्भा हार मान इन्हें प्रणाम कर स्वर्ग को चली गई। देखिये ऐसी रूपवती कामिनी रत्न को एकान्त में पाकर और स्वयम् स्वीकार करती हुई को भी युक्ति द्वारा निन्तात दूर रखना और मन पर जरा भी आवरण को न आने देना कितनी अलौकिक योगशक्ति का तथा संयम का काम है। धन्य है उन महात्माओं को जो इस प्रकार कनक और कामिनी से मन हटा कर शाश्वत शिव-पद में लीन होते हैं। यह रम्भा और शुकदेव का वृतांत है। [रम्भा शुक सम्वाद नाम से प्रसिद्ध है।]

इसका सारांश यह समझना चाहिये कि मोक्ष प्राप्ति के लिये तथा बल पुष्टि नैरोग्य कांति मेधादि गुण रक्षा के लिये जितेन्द्रिय होना मनुष्य का एक प्रधान कर्तव्य है।

सुग्रीव को दे अपमान वालि भी,
स्वराज्य से दूर हटा अनीति से।
मरा उसी के कृत मित्र राम से,
न वैर कोई निज बन्धु से करो ॥२१॥

वालि नाम का वानर इन्द्र का अवतार माना गया है। यह रामावतार के समय में था। इसके बल वैभव की कथा हमने पहले ....लिखदी है। यह महाबली एकदिन दुन्दुभि नाम के राक्षस से लड़ता हुआ उसे मारने की इच्छा से पहाड़ की गुफा में लेगया और सुग्रीव को गुफा के द्वार पर बैठा कर यह कह गया कि तू एक महीना तक यहां मेरी प्रतीक्षा कर। यदि मैं इस अवधि के भीतर न आऊं तो समझ लेना कि वालि मारा गया। बड़े भाई की आज्ञानुसार सुग्रीव वहीं उतने समय तक ठहरा। अन्त में अवधि के दूसरे दिन एक बड़ी रुधिर की धारा बहती निकली। तब सुग्रीव ने सोचा कि वालि मारा गया होगा, क्यों कि यह प्रतिज्ञा का दृढ़ है। अवधि भी पूर्ण हुई। अब अपने नगर में चल मन्त्री आदि बड़े राज्य-कार्य करने वालों को तथा रानियों को यह हाल सुनादें। तदनुसार ही उसने गुफा के मुख पर एक बड़ी शिला रख कर वहां से किष्किन्धा में आकर सबको यह समाचार सुनाया। तब राज्य कर्मचारी, प्रजावर्ग ने मिलकर वालि का शोक प्रकट करते हुए सुग्रीव को राज्य-सिंहासन पर बिठा राजा बना दिया। सुग्रीव धर्म स्थिति के अनुसार राज करता रहा कि थोड़े ही दिनों बाद वालि ने दुन्दुभि

को मार गुफा से निकल नगरी में आके देखा तो सुग्रीव राज कर रहा था। यह देखते ही उसका कोप रूप अग्नि धधक उठा। बालि ने तुरन्त ही सुग्रीव को सिंहासन से उतार दिया और खूब मारा तथा देश से निकाल भी दिया। और कहने लगा कि तू बड़ा दुष्ट है मुझे मारना चाहता ही था जो ऐसा मौका पा तू ने यह घात किया। अब मैं तुझे मार डालूंगा। तू निकल आ। यों कह सुग्रीव को वहां से निकाल दिया। उसकी स्त्री को बालि ने अपने पास ही रख लिया। उसी दिन से मतंग ऋषि के आश्रम के पास रहते हुये सुग्रीव ने हनुमान के द्वारा राम लक्ष्मण के दर्शन पाकर उन्हें अपना दुःख का सब वृत्तांत कह सुनाया, तब तो राम ने सुग्रीव के आगे प्रतिज्ञा की कि यदि ऐसा अन्याय किया है तो तुम मत घबराओ। मैं बालि का वधकर तुझे किष्किंधा का राजा बनाऊंगा। तू मेरे संमुख बालि से संग्राम कर। तदनुसार ही सुग्रीव राम की सहायता से निर्भय होकर बालि से लड़ा। उस लड़ाई में राम ने एक बाण से बालि को मार डाला।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के किष्किन्धा काण्ड में प्रसिद्ध है।]

इसका यह भावार्थ स्पष्ट ही है कि भाई २ आपस में कभी मत लड़ो। ऐसा करने से सब घर ही नष्ट होजाता है।

सेवा नितान्त कर नारद साधुओं की,
देवर्षि हो भुवन मान्य हुआ विवेकी।
विज्ञान इच्छु शुभ भावुक मानवों को,
सत्संग लाभ करना नित चाहिये ही ॥२३॥

देव ऋषि नारद का यह वृत्तान्त भागवत के प्रथम स्कन्ध में प्रसिद्ध है। इनने अपना पूर्व भव का चरित्र सुधार व्यास देव को स्वयं सुनाया है। यह पहले जन्म में दासी के पुत्र थे। इनकी माता इन्हें बाल दशा में ही छोड़ परलोक चली गई थी। वह इन्हें लेकर एक आश्रम में साधु महात्माओं की सेवा में रहती थी। वहां ये भी महात्माओं से कथा भजन आदि सुनते रहते थे। निदान इनके हृदय में भक्ति का अंकुर जम गया और ये माता के मरने के पीछे साधु सेवा में ही रात दिन बिताते थे। बालकों के खेल भी ये खेलते तब ठाकुर जी स्थापित कर उन साधुओं की सेवा की नकल ही किया करते थे और भगवान् को उन खिलोनों में भी पूर्ण रूप से स्थित मानते थे। यों करते २ नारद को भक्तों की मण्डली में बड़ा प्रेम हो गया। यहाँ तक वे इन के प्रेमी होगये कि उन महात्माओं की उच्छिष्ट खाना भी अपना जन्म सुधार और उद्धार का हेतु समझते थे और वैसे ही करते थे। इनकी ऐसी प्रीति और भावनाएं देख साधुओं ने इसको भगवान् की भक्ति का मार्ग दिया, मन्त्र दिया और पूजा विधान आदि बता दिया। नारद जी उनके उपदेशानुसार भक्ति योग करते २ निष्पाप और शुद्ध सत्व मूर्ति हो गये। भगवान् ने इन्हें अपने में निश्छल प्रेम करते देख एक दिन दर्शन दिया। पीछे नारद उस झांकी के लिये बहुत विलाप करते हुये तपस्या करने लगे। तब भगवान् ने आकाश वाणी द्वारा कहा कि इस साधु सेवा के प्रभाव से ही इस जन्म में मैंने तुम्हें दर्शन दिया है कि मुझमें भाव स्थिर हो जावे। अब तुम्हें जन्मान्तर में मैं प्रत्यक्ष मिलूंगा। तुम संसार में प्रसिद्ध स्वच्छन्द चारी सर्वज्ञ स्वतन्त्र प्रतिभा वाले महात्मा देवर्षि होगे; इत्यादि।

इसका यह भावार्थ हुआ कि सत्संग से मनुष्य के आचारण विचार सुधर जाते हैं। ज्ञान विज्ञान की सिद्धियां प्राप्त होती हैं। दम शम आदि गुण बढते हैं। दुर्वासनायें दूर होती हैं, इत्यादि।

अगस्त्य के पाकर के निदेश को,
पडा हुआ है गिर विन्ध्य आज भी।
बुरे भले हों गुरु वाक्य तो उन्हें,
सदा शिरोधार्य करो टलो नहीं॥२३॥

विन्ध्य नाम का एक पहाड़ है। भारत वर्ष के मध्य प्रांत में बहुत फैलाव से यह पड़ा हुआ है। लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर से कहा कि एक दिन सूर्य को विन्ध्य पर्वत बोला कि महाराज! आप मेरु की जिस प्रकार प्रदक्षिणा करते हो उस प्रकार मेरी क्यों नहीं करते? मैं भी तो महापर्वतों में हूं। सात देव गिरियों में मेरा भी उच्च स्थान है। तब सूर्य ने उत्तर दिया कि जिसने जगत् को बनाया है उसने ही मुझे इसके पास से प्रदक्षिण हो जाने का मार्ग भी बताया है। मैं मेरी इच्छा से यह काम नहीं करता हूं। यह सुन विन्ध्य गिरि क्रोध में आकर सूर्य के मार्ग को रोकने की इच्छा से आकाश में बहुत ऊंचा बढ गया। इतना बढा कि सूर्य की गति रुक गई और लोकों में अन्धकार छा गया। यह दशा देख देवता सब मिल

कर विन्ध्य के पास आकर समझाने लगे, परन्तु विन्ध्य पर्वत ने उनको एक न सुनी। वह सूर्य का मार्ग रोक कर खड़ा ही रहा। तब देवों ने यह एक युक्ति विचार पूर्वक निकाली कि महामुनि अगस्त्य इस पर्वत राज के गुरु हैं। उन्हें प्रार्थना कर उनके द्वारा इसे समझा कर यथा स्थित करना चाहिये। इस विचार के अनुसार ही सब देवताओं ने अगस्त्य मुनि के पास जा अपना दुःख कह कर प्रार्थना की। अगस्त्य भी सुनते ही वहाँ से उठ विन्ध्यगिरि के पास आये। गुरु को आते देख कर वह पर्वतेन्द्र साष्टाङ्ग प्रणाम करने को जमीन पर लेट गया। महर्षि अगस्त्य ने उसे आशीर्वाद देकर कहा कि शैलेन्द्र! मैं दक्षिण दिशा की ओर जाना चाहता हूं तुम मुझे मार्ग दो और मैं चाहता हूं कि जब तक मैं वापिस न लौटूं तब तक इसी प्रकार पड़े रहो फिर जब मैं लौट कर आऊं तब तुम्हारी इच्छानुसार ही तुम बढना। विन्ध्य ने कहा बहुत अच्छा। तब अगस्त्य दक्षिण को चले गये। तब से आज तक दक्षिण दिशा से वापिस उत्तर को आते ही नहीं और तभी से गुरु भक्त विन्ध्याचल भी वैसे ही पृथ्वी पर पडा है। आज तक भी गुरु की आज्ञा के विना बढता ही नहीं है।

[यह कथा महाभारत के वन पर्व में ११२ वें अध्याय में है।]

इसका भावार्थ कैसा प्रभाव डालता है कि पहाड जो (पत्थर मिट्टी के हैं) जड हैं, उनका भी गुरु वचनों पर इतना विश्वास है कि वे गुरु वचनों के एक अक्षर को भी निष्फल नहीं करते हैं। तो बालको! तुम तो चेतन हो, इस कारण तुम अवश्य ही गुरु के दृढ और सच्चे भक्त बनो। गुरु की

आज्ञा चाहे कैसी भी हो पालन करना ही तुम्हारा धर्म समझो।

दिलीप भूमीपति ने स्वदेह भी,
देके बचाई मुनि-धेनु सिंह से।
समस्त ही भारत हिन्दु वृन्द का,
सप्रेम गोरक्षण मुख्य कार्य है ॥२४॥

महाराजा दिलीप बड़े धर्मात्मा और गौभक्त हुए हैं। एक बार पुत्र प्राप्ति के लिये यह महाराज वशिष्ठ मुनि के पास पहुंचे और उनसे सन्तान के न होने का कारण पूछा। तब वशिष्ठ ने ध्यान के द्वारा सब हाल जान कर कहा कि राजेन्द्र! तुम कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गौ की सेवा करने लगो। यह गो सेवा करने लगा। यह गौ वशिष्ठ के पास यज्ञ के लिये रहती थी। राजा दिलीप प्रति दिन अपनी पत्नी सुदक्षिणा सहित इसकी सेवा करता था। सुबह होते ही इस नन्दिनी के साथ जाता, जंगल में इसके मच्छर उड़ाता, कवल बना २ इसे खिला जल पिलाता इत्यादि। सब प्रकार इसे सेवन करते हुए कुछ दिन बीते थे कि एक दिन गौ ने राजा की परीक्षा करने को हिमालय की गुफा में प्रवेश किया। वहां एक सिंह (जो माया का था) ने इस पर धावा किया और इसे दबा लिया। गौ की यह दशा देख राजा ने ज्यों ही

अपना धनुष तैयार कर बाण लगाने को तूणीर में हाथ डाला, त्योंही हाथ कंधे पर चिपक गया। बहुत ज़ोर किया, पर नहीं छूटा। राजा आश्चर्य में भर अन्तःकरण में बहुत दग्ध हुआ। पर करे तो क्या करे। इतने में सिंह ने इसे मनुष्य वाणी से बहुत समझाया कि तुम एक गौ के लिये इतना दुःख क्यों पाते हो। राजा बोला यह धेनु मुनि की है, इसकी रक्षा मैं करता हूं, तो मैं इसे मरते हुए कैसे देखूं? तू यों कर कि तुझे भूख है, तू भोजन की इच्छा से इसे दबाये हुए है तो मेरी देह को खाले और इसे छोड़दे। सायंकाल होता है इसका बछड़ा इसके लिये पुकारता होगा। मुझ से यह दुःख नहीं देखा जाता, सिंह ने पहले तो राजा को समझाया कि तू एक गौ के लिये अपने सुन्दर शरीर और राज्य आदि बहुत गुणों को छोड़ता है—यह ठीक नहीं। फिर राजा ने जवाब दिया कि यह शरीर तो एक न एक दिन नष्ट होवे ही गा। इस कारण इसकी चिन्ता न करो। और यदि तुम मेरे शरीर की रक्षा करना ही चाहते हो तो मेरे यशरूप शरीर को स्थिर करो। यह सुन सिंह ने स्वीकार किया कि लाओ देह दो, मैं इसे छोड़ता हूं। राजा ने उसके यों कहते ही एक मांस के पिंड की तरह अपने शरीर को हर्ष के साथ सिंह के आगे गिरा दिया। इतने में सिंह उस पर पड़ने का अभिनय दिखाता हुआ उसी क्षण में अदृश हो गया। देवों ने आकाश से पुष्प वर्षा की और दिलीप की गो भक्ति पर जय जयकार किया। नन्दिनी ने भी इस निश्छल भक्ति से प्रसन्न हो राजा को पुत्र होने का वर दिया।

[यह कथा रघुवंश महाकाव्य के दूसरे सर्ग में प्रसिद्ध है।]

गौ ही भारत वासियों के जीवन में अनेक तरह से सहायक होती है, अतः इसकी रक्षा करना पत्येक भारतवासी जन का परम कर्तव्य है। इसलिये प्यारे बालको! गोरक्षा में मन लगाओ। घर २ में धेनुएं रखो, जिससे देश की सब तरह से पुष्टि हो।

दिलीप का अश्व चुरा महेन्द्र भी,
हुआ पराभूत नरेन्द्र-पुत्र से।
कभी किसी की कुछ वस्तु दम्भ से,
सन्मानवों को हरना न चाहिये ॥२५॥

महाराज दिलीप वृद्धावस्था में १०० यज्ञ करने का विचार कर यज्ञ करने लगे। ९९ वें यज्ञ तो इनने विधि पूर्वक समाप्त कर लिये। और १०० वें यज्ञ को जब आरम्भ किया, तब इन्द्र ने इसके यज्ञ के घोड़े को गुप्त रूप से चुरा लिया। राजा ने घोड़ा न देख कर रघु को सेना साथ दे घोड़े को ढूंढने भेजा। राजकुमार रघु ने भी चारों ओर ढूंढते हुये मार्ग में नन्दिनी नाम की गौ के दर्शन कर उसके............ के जल को नेत्रों से लगाया और प्रणाम किया। उस जल का यह प्रभाव हुआ कि राजकुमार दिव्य दृष्टि होगये। और उन्होंने आकाश मार्ग के द्वारा घोड़ा लेकर जाते हुए इन्द्र को पहचान लिया और धनुष बाण तैयार कर कहा कि देवेन्द्र!

तुम यज्ञ के सफल करने वाले कहला कर भी यज्ञ को बिगाड़ते हो ! यह कुकर्म तुम्हें न करना चाहिये। तब इन्द्र ने जवाब दिया कि राजकुमार ! तुम ठीक कहते हो, परन्तु जैसे पुरुषोत्तम शब्द हरि के लिये ही है और महेश्वर शब्द त्र्यम्बक ही के लिये है, शतक्रतु यह पद मुझे ही मिला है। मैं इस पद को सहज ही कैसे छोड़ दूं। यह राजा सौ यज्ञ करने पर शतक्रतु नाम पा सकता है, इस कारण मैंने यह किया है ! अब तुम जाओ घोड़ा नहीं मिलेगा। तब रघु ने जवाब दिया या तो घोड़ा दो, नहीं धनुष हाथ में लो और युद्ध करो। मुझे बिना जीते आप घोड़ा नहीं ले जा सकते हो। इन्द्र ने यह सुन युद्ध आरम्भ किया। उस लड़ाई में महा बलवान राजकुमार रघु ने अलौकिक पराक्रम दिखा कर इन्द्र का पराभव दिया और इसके घोर पराक्रम को देख इन्द्र प्रसन्न हो गया और यज्ञ का फल दे दिया।

[यह कथा रघुवंश महाकाव्य के ३ रे सर्ग में प्रसिद्ध है]

सच है, कैसा ही महा पुरुष हो कुकर्म करने से वह कुकर्म, करने वाले के मन को बलहीन कर देता है। मन के बलहीन होते ही पराजय होता है—इसमें सन्देह नहीं ! इस कारण प्यारे छात्रगण ! तुमको इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि किसी को कुछ भी वस्तु हो, कपट से तुम उसे कभी न छुओ। यह चोरी पंच महापातकों में से एक बड़ा पाप है। चोर की प्रतिष्ठा कभी नहीं होती है।

संग्राम में कह युधिष्ठिर भूप ने भी,
मिथ्या गिरा भ्रम भरी सुर लोक जाते।
देखा मुहूर्त भर नरक यातना को,
कल्याण इच्छुक मनुष्य न झूंठ बोलें २६

महाभारत की लड़ाई में द्रोणाचार्य को अवध्य और अजेय जान और उसकी बाण वर्षा से पाण्डवों की सेना को नाश होती हुई देख, श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा यदि द्रोणाचार्य इसी प्रकार लड़ते रहे तो तुम्हारी जय नहीं होने की है और जब तक द्रोणाचार्य शस्त्र न त्याग दें तब तक ये पराजित नहीं होने के हैं। ये पुत्रवध को सुन कर शस्त्र त्याग देंगे। इस कारण तुमको इन्हें यह कह देना चाहिये कि तुम्हारा पुत्र अश्वत्थामा मर गया। यह सुन कर भीम ने एक अश्वत्थामा नाम का हाथी मार गिराया और द्रोणाचार्य से कह दिया कि अश्वत्थामा मर गया। द्रोणाचार्य सुन कर परम क्रुद्ध हो गये और पाण्डव सेना का संहार करने लगे। कृष्ण ने यह देख युधिष्ठिर से कहा कि ये भीमादि की बात पर संग्राम में विश्वास नही करते हैं। तुम कह दो, तुम पर द्रोण का विश्वास है कि यह झूंठ नहीं बोलता है। युधिष्ठिर ने संशय भरी बात हाथी के नाम की ओट में कहदी कि हे द्रोण ! अश्वत्थामा मर गया और हाथी का नाम धीरे से लिया, जो उसने न सुना। द्रोणाचार्य ने पुत्र वध सुन कर शस्त्र छोड़ दिया। इस प्रकार युधिष्ठिर ने एक ही दिन एक बार झूंठ बोली थी, वह भी संशय में। उसका

भी यही फल हुआ कि जब ये लड़ाई जीत कर राज्य कर के स्वर्ग में जाने लगे, तब द्रौपदी सहित चार भाइयों का तो देह रास्ते में हिमालय पर ही गिर गया और युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग को गये, परन्तु इन्हें रास्ते में नरक दिखाया गया। दो मुहूर्त भर इनने नरक यातना देखी। वहां भीम अर्जुनादि को भी चिल्लाते देखा। दो मुहूर्त पीछे यह स्वर्ग में गये और सब भाई मिल गये। यह उस झूठ का ही फल है, जो धर्मराज को भी नरक देखना पड़ा, अन्यथा इनको नरक देखने का क्या काम?

[युधिष्ठिर के नरक दर्शन की कथा महाभारत के महा प्रास्थानिक पर्व में है।]

इस लिये प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि झूठ बोलने का सर्वथा त्याग करे!

प्रसिद्ध दानी नृप रन्ति देव ने,
स्वयं न पीके जल भी वृत्तान्त में।
देही दिया भिक्षुक को, नृप सही,
विना दिये याचक को न फेरिये ॥२७॥

महाराज रन्तिदेव भरतवंश में हुए हैं। ये संकृति के पुत्र थे। इनका विश्वास भाग्य पर बहुत रहता था। ये उदार

ऐसे थे कि स्वयं भले ही भूखे रह जाते, परन्तु याचकों को कभी खाली न जाने देते थे। जो इन्हें मिलता खाने पीने पहरने आदि को, उसे ही खाते पीते तथा पहरते। उस समय यदि कोई याचक आ जाता तो उसे जो पदार्थ मांगता वही श्री हरि के भाव से निवेदन कर देते थे। एक बार उद्योग को छोड़ (प्रारब्ध) ही को मानने वाले इस राजा को भूख के मारे ४८ अड़तालीस दिन निकल गये, पर कुछ भी नहीं मिला। यह जंगल में आश्रम बना तप आदि करता था। वहीं व्रत में बैठा था, जब ४९ वां दिन आया, तब प्रारब्ध वश किसी ने घृत खीर लपसी जल ये पदार्थ इन्हें लाकर दिये। जब राजा ने कुटुम्ब सहित भोजन की इच्छा की। तब कोई ब्राह्मण अतिथि आया। रन्तिदेव ने उन पदार्थों में से कुछ भाग निकाल उसे दे विदा किया। बचे हुए का विभाग कर ही रहा था कि कोई शूद्र अतिथि आकर याचना करने लगा। राजा ने उसे भूख से व्याकुल देख बचे पदार्थ श्री हरि की भावना कर समर्पण कर दिये। कुछ ही पदार्थ रहे थे कि एक तीसरा भिक्षुक आकर बोला महाराज! मैं मरता हूं, मुझे अन्न दो। यह आर्तवाणी सुनते ही रन्तिदेव ने बचा हुआ सब अन्नादि उसे श्री हरि भावना से सौंप दिया। फिर केवल जल ही बचा था, वह भी एक बार की प्यास बुझाने ही के योग्य था। उससे ही राजा ने अपनी तृप्ति करना चाहा। इतने में एक चाण्डाल भिक्षुक ने आकर सूखते कण्ठ से कहा महाराज! मुझ नीच को जल दो, मैं प्यास से व्याकुल हूं। राजा ने उसको प्यासा देख वह जल श्री हरि की भावना कर उसे दे दिया और परमात्मा से प्रार्थना की-

कि हे दयामय ! मैं अणिमादि ऐश्वर्य की इच्छा नहीं रखता हूं, न मुझे मोक्ष की वांछा है, किन्तु सब प्राणियों के हृदय में रह कर उनके दुःखों को स्वयं भोगने की इच्छा रखता हूं। जिससे मेरे एक के दुःख भोग लेने से वे सब दुःख रहित हो जांय। ऐसा कहते हुए रन्तिदेव को उसके दातारपन से प्रसन्न होते हुए ब्रह्मा विष्णु महेश्वरों ने दर्शन दिया। और उसी समय से उसकी भूख प्यास श्रम आदि सब दुःख दूर हो गये। ये ब्रह्मा विष्णु महेश ही माया कर के भिक्षुक रूप धारण कर इस राजा की जांच करने आये थे, परन्तु राजा की उदारता पर उनको विस्मित होना ही पड़ा और रन्तिदेव ने भगवान् के चरणारविन्दों में अपने अन्तःकरण को लगा और कुछ वर नहीं मांगा। वे उसी समय से जीवन-मुक्त हो गये।

[यह कथा भागवत के नवें स्कन्ध के २१ वें अध्याय में है।]

इसलिये याचकों को कुछ न कुछ न कुछ दिये बिना न लौटाओ। न मालूम कौन २ साधु महात्मा मुनि आदि किस वेष में किस समय तुम्हारे द्वार पर आ जावें।

गया चमू अन्दर व्यूह तोड़ के,
न चाहता भी अभिमन्यू चित्त से।
बचा नहीं कौरव सैन्य वृन्द से,
सामर्थ्य से बाहर साहसी न हो ॥२८॥

महा भारत की लड़ाई में जब द्रोणाचार्य ने पद्मव्यूह रचना में सैना को सजा लिया था और इधर अर्जुन संशप्तक वध के लिये चला गया था, उधर जयद्रथ ने पाण्डवों के निरोध का वरदान पालिया था, ऐसे समय में द्रोणाचार्य के संमुख लडने को और उस पद्मव्यूह के भेदन करने को युधिष्ठिर ने अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु को खडा किया। अभिमन्यु शस्त्र विद्या अर्जुन से सीखता था। इस विद्या में उसने छोटी सी उम्र में बहुत सफलता पाली थी। युधिष्ठिर ने उसे बहुत बधावे लगा कर उत्साह दिलाया, तथापि वह यह बोला कि मैं जा सकूंगा, परन्तु मेरा चित्त मुझे साक्षी नहीं देता है. क्यों कि मैं जानता हूं मुझे मेरे पिता ने व्यूह का भेदन तो बताया है, परन्तु वापिस आने की युक्ति नहीं सिखाई। अतः सम्भव है कि मैं किसी विपत् में फंस जाऊं और न आसकूं। इस कारण मेरा हृदय साहस और उत्साह नहीं बांधता है। यह सुन युधिष्ठिर और भीम बोले कि वीर अभिमन्यु! अर्जुन आकर अपनी निन्दा न करे, ऐसा करना चाहिये, और तुम व्यूह का भेदन तो करो, फिर तुम्हारे पीछे सहायक हम सब हैं--तुम्हें कोई विपत् नहीं आने देंगे। ऐसी बातें सुन अभिमन्यु द्रोणाचार्य्य के व्यूह का भेदन करने चला गया। वहां इस वीर बालक ने अपना अलौकिक पराक्रम दिखाया और द्रोणाचार्य्य आदि वीरों के मुख में अंगुलियां चबवादीं, परन्तु शत्रुओं ने कूट नीति और विश्वास घात कर एक दम सब महारथियों ने आक्रमण कर इस धर्म युद्ध करते हुये वीर बालक के प्राण लेही लिये। उधर वे युधिष्ठिर, भीम आदि जो इसके सहायक होकर गये थे, उन्हें जयद्रथ ने वरदान के प्रभाव से रोक दी

लिया था, इस कारण यह अभिमन्यु अकेला था और उधर वे महारथी थे, फिर भी अनीति से उसे मारा।

इस कारण सामर्थ्य से बाहर साहस करना भी बुरा है। अपनी शक्ति भर ही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे विपत्ति के समय पुरुष संभल सके।

शमीक को छेड मरे भुजङ्ग से,
राजा परीक्षित मुनिपुत्र शाप पा।
डसा गया तक्षक से अवश्य ही,
सता द्विजों को न दुराशिषें लो॥२९॥

पाण्डवों के वंश में एक प्रसिद्ध राजा परीक्षित हुआ था। यह बड़ा प्रतापी था। इसको भी शिकार खेलने का बहुत व्यसन था। एक दिन यह राजा जंगल में शिकार खेलने गया, वहां इसने एक मृग को बाण से मारा। वह मृग बाण खाया हुआ ही भागा और इसे न दीख पडा। राजा इधर उधर दौड़ता हुआ बहुत दूर जंगल में आगे निकल गया। भूख प्यास से व्याकुल हुये राजा ने कुछ दूर और जाकर एक आश्रम देखा। वहां एक तपस्वी को देखा जो ध्यान में चित्त लगाये बैठा था और मौन व्रत रखता था और बछड़ों के दूध पीते में मुख से गिरते हुये झागों को चाट कर ही रहता था। अन्य

कुछ पदार्थ नहीं खाता था। इसका नाम शमीक ऋषि था। राजा ने उसे देख कहा कि मैं परीक्षित हूं। मेरे बाण से बिंधा हुआ मृग नहीं मिलता है। आपने इधर आते देखा है तो बताइये। मौन व्रत के कारण मुनि ने कुछ उत्तर न दिया। राजा ने उनके उत्तर न देने से क्रोध कर इधर उधर देख एक मरे हुये सर्प को धनुप की कोटि से उठाया और उसे मुनि के गले में लपेट कर चला गया। मुनि ने उसे कुछ भी न कहा, परन्तु उस शमीक मुनि के एक शृंगी नामक पुत्र था। वह बडा तेजस्वी और महा तपस्वी तथा उग्र व्रत धारी था। उसे जाकर उसके मित्र कृशि नामक मुनि पुत्र ने कहा कि तुम क्या घमण्ड भरी बातें करते हो, घर जाकर देखो तो पिता के कन्धे पर मरा सांप किसने डाला है? कुछ खबर भी है? शृंगी ने पूछा कि किसने मेरे पिता का यह अपमान किया है? तब तो कृशि ने परीक्षित को सब हाल सुना दिया। सुनते ही शृङ्गी को बडा क्रोध हुआ और कहने लगा कि देख तू मेरे भी तप और तेज को कि मैं क्या करता हूं! यह कह आचमन ले परीक्षित को यह शाप दिया कि जिस दुष्ट राजा ने मेरे निरपराधी पिता के गले में मरा सांप डाल कर छेड छाड की है, उस परीक्षित को आज की ७ वीं रात्रि में तक्षक नाम का उग्र विपवाला सांप काट कर यम लोक पहुंचावे। यह शाप दे घर आ कर पिता से शाप का हाल कह सुनाया। पिता ने राजा के शाप को सुन बहुत दुःख माना और उसने पुत्र शृङ्गी को बहुत समझाया पर उसने यही कहा कि मैं झूंठ नहीं बोलता हूं, इस कारण यह तो शाप सत्य होगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं। फिर सातवें दिन तक्षक सूक्ष्म रूप से फल में बैठ राजा के

पास पहुंचा और उसे मुनि पुत्र के वचनानुसार डस ही लिया और वह परीक्षित मरगया।

[यह कथा महाभारत के आदि पर्व के ४० वें और ४१ वें अध्याय में है, और भागवत मे भी है।]

इसका सार यह समझो कि ब्राह्मणों को सताना बहुत बुरा है। जो तपस्वी ब्राह्मण होते हैं; वे असह्य तेज धारी होते हैं। उनकी वाणी से दुराशिषें न लो—शुभाशीर्वाद ही ग्रहण करो।

स्वराज पा वेन महीप भूमि पै,
उद्दण्ड हो दे दुःख पौर वर्ग को।
मारा गया सब प्रजा समूह से,
ऐश्वर्य पा उद्धत होइये नहीं॥ २०॥

महाराजा अङ्ग के सुनीथा नाम पत्नी से वेन नाम का एक पुत्र हुआ। वह बचपन से ही कुकर्म करता, पाखण्ड करने की चेष्टा करता और बालकों को नदी पर लेजा नाव में बिठा कर प्रवाह के बीच डाल देता और उन्हें बहते डूबते मरते देख कर प्रसन्न होता। ऐसे २ खेल वह खेलता था कि जिससे हिंसादि पाप ही की प्रवृत्ति होती थी। यों करते २ कुछ दिन बीते कि प्रजा ने मिल कर राजा अङ्ग से उसका हाल कह

सुनाया। राजा ने तुरन्त ही उसे देश के बाहर निकाल दिया। वह नगर बाहर जङ्गल में चोर भील आदि में रहकर वैसे ही कर्म करता रहा। नगर में कुछ उपद्रव नहीं करता था, इस कारण प्रजा सुख से रहने लगी। इधर कुछ समय पीछे अङ्ग की मृत्यु हो गई, तब प्रजा ने मिल कर विचार किया कि वह पहले बालक था अब तरुणाई में होगा। कुछ बुद्धि पलट गई होगी और फिर चाहे जैसा हो राजा का पुत्र है तो इसे ही राजा बनाना चाहिये। यदि राजा न बना कर अराजक भूमि रखेंगे तो चोर डाकुओं का बहुल भय होगा, प्रजा आपस में लड कर मरेगी, इत्यादि। अनेक बाधायें आवेंगी, इस कारण उसे ही राजा बनादें। यह सोच ब्राह्मण क्षत्रियादि सब प्रजा वर्गों ने उस वेन को ही राजा बना दिया। राजा बनते ही उसने अपना पूर्व वैर लेना प्रारम्भ किया। उसने डौंडी पिटवा दी कि मेरे राज्य में कोई यज्ञ तप दान धर्म पूजा पाठ आदि कर्म न करें। और करें तो मेरा ही जप तप पूजा आदि करें। मुझे ही ईश्वर परमात्मा आदि जो कुछ मानना है, मानें। इस हुकुम का जो आचारण न करता उसे ही दण्ड देता। किसी मुनि के यज्ञ को बिगाडा, किसी ब्राह्मण को मार डाला, किसी साधु को पीटा, इत्यादि नाना उपद्रव उसने करना प्रारम्भ किया। यह बात प्रजा से न देखी गई। कुछ दिन तो बिताये। देखते रहे कि अब भी राजा ध्यान ठीक हो। पर न होते देख एक दिन सब प्रजा इकट्ठी हो संगठन कर चारों वर्ण ही राजा के द्वार पर गये और ब्राह्मणों ने तप तेज से, क्षत्रियों ने शस्त्र प्रहार से, सब प्रजा ने भी गाली गलौज प्रहार आदि से उसे मार डाला। [इसकी कथा भागवत में प्रसिद्ध है।]

इस कारण ऐश्वर्य पाकर कभी घमण्ड करते हुये अनीति मत करो। उद्दण्ड पने के कारण ही तो वेन की यह दशा हुई।

यथाति को यौवन पुत्र ने दे,
पाया मही का सुसमृद्ध राज्य।
सदा पिता का हित साधते ही,
सम्पत्ति का भोग करो सुखी हो ॥२१॥

नहुष का पुत्र ययाति राजा था। उसके ५ पुत्र थे-(१) यदु (२) तुर्वसु (३) द्रुह्यु (४) अनु (५) पुरु। यह राजा ययाति बहुत कामी थे। इनके दो स्त्रियां थीं—एक देवयानी दूसरी शर्मिष्ठा। यदु और तुर्वसु ये दो पुत्र देवयानी के थे, यदु और द्रुह्यु, अनु तथा पुरु ये तीन शर्मिष्ठा से हुए थे। एक बार शुक्र के शाप से इसे जवानी में ही बुढ़ापा प्राप्त हो गया। बुढ़ापा आने पर भी यह काम भोग से तृप्त न होकर शुक्र से प्रार्थना कर बुढ़ापा बदल देने का वर ले आया और अपने बड़े पुत्र को बोला कि मुझे तुम्हारा यौवन देकर कुछ काल के लिये मेरा वृद्ध पन ले लो। यह सुन कर यदु नट गया और बोला कि बल को नाश करने वाली इस जरा को मैं वैराग्य हुये बिना नहीं ले सकता हूं। जवानी में विषय भोगे बिना विषयों से वैराग्य नहीं होता है, इस कारण मेरी इच्छा नहीं है कि मैं अपनी तरुणाई तुम्हें दूं।

इसी प्रकार राजा ने और पुत्रों को बुला कर कहा तो उनमें तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु—ये तीनों भी यदु का सा जवाब देकर चुप होगये और उसको तरुणाई न दे सके। तब उस राजा ने छोटे पुत्र पुरु से कहा कि बेटा! मेरे बुढापे को कुछ काल लेकर मुझे तेरा यौवन देदेगा क्या? तेरे बड़े भाइयों के समान तुझे निषेध करना योग्य नहीं है। पुरु ने पिता की आज्ञा सुन कर कहा पिताजी! वह पुत्र ही नहीं जो पिता की आज्ञा का पालन न करे और जिसके वीर्य से बन कर इस लोक और परलोक के पुरुषार्थ को पा लेता है उस पिता का उपकार यदि अपनी देह से न करे तो पुत्र पिता की विष्ठा समान है। इस लिये लीजिये मैं अपनी तरुणाई आपको देकर आपका बुढ़ापा लेने को तैयार हूं। राजाने पुरु की भक्ति से प्रसन्न हो उसकी तरुणाई ग्रहण करली और कुछ काल विषय भोग वैराग्य धारण कर अपने छोटे पुत्र को भूमि का राज्य दे कर वन में तपस्या करने चला गया। यद्यपि राज्य के योग्य बड़ा ही पुत्र था, परन्तु पिता की आज्ञा के न मानने के अपराध के कारण उसको और उससे छोटे और तीन पुत्रों को भी राज्य न दिया। और पिता की आज्ञा पालन के धर्म और श्रद्धा को देख प्रसन्न होकर राजा ने यह किया।

[यह कथा भागवत के नवम स्कन्ध के १८ वें अध्याय में है]

इस कारण माता पिता के मन के अनुकूल आचरण करते रहो और जहाँ तक हो सके उनका हित हो सो करो। इससे तुम्हें वे अपना सर्वस्व देंगे और आशीर्वाद देंगे, जिससे तुम हरे—भरे २ वृक्ष की भांति सदा फलते फूलते रहोगे।

मारा जलाया गिरि से गिरा दिया,
प्रह्लाद को दुष्ट हिरण्यगर्भ ने ।
हटा न तो भी वह विष्णु भक्ति से,
कल्याण के साधन को न छोड़िये ॥३२॥

हिरण्यकशिपु नाम का एक बड़ा प्रतापी राक्षस हुआ था। वह कठिन २ तपस्या कर ब्रह्मादि देवों से अनेक वरदान पा कर मदमत्त हो गया था। बल का घमण्ड पाकर उसने सब भूमि पर अपना राज्य कर लिया और नर सुर आदि से अजेय होने के कारण वह देवताओं से पूर्ण वैर रखता था। और विष्णु का तो वह घोर विरोधी हुआ। उसके छोटे पुत्रों में से एक पुत्र प्रह्लाद नाम का था। उसको गर्भावस्था में ही नारद जी ने भगवान् के नाम मन्त्र का उपदेश दे दिया था। इस कारण वह प्रह्लाद विष्णु का भक्त हुआ। वह बाल्यावस्था में ही विष्णु का नाम जपता और ब्राह्मण साधुओं में प्रेम करता हुआ भगवान् की कथा सुनने में प्रीति रखता था। जब उसकी यह दशा देखी, तब हिरण्यकशिपु ने उसे बहुत समझाया परन्तु उस बालक ने अपनी आन को जो कल्याण करने के साथ आत्मोद्धार का हेतु थी, छोड़ना नहीं चाहा। उसे गुरु गृह में पढ़ने को रखा, वहां भी वह पट्टी पर राम ही राम लिखता और पढ़ाई के कोई अक्षर न पढ़ता था। गुरु भी इस बात को देख विस्मित हो उसे मारता पीटता, पर वह न मानता। और गुरु के संमुख वेदान्त की बातें करता जो ब्रह्म ज्ञानी किया

करते हैं। गुरु को आश्चर्य होता था कि यह वर्णमाला भी न सीख सका है और ज्ञान कथाएं अद्भुत २ सुनाता है। इस कारण यह तो कोई गर्भ विज्ञानी भक्त राज़ है, तथापि राजा के भय से वह बहुत मार पीट कर पढाने पर भी न पढा, तब हिरण्यकशिपु के पास लेजा कर गुरु ने सब हाल कह सुनाया। गुरु की बात सुन हिरण्य कशिपु प्रह्लाद पर अत्यन्त क्रुद्ध होगया, और उसे उलटा सीधा समझाने लगा। तब तो प्रह्लाद ने पिता को भी उपदेश की तरह समझाना प्रारम्भ किया। और कहा कि पिता जी! पढना लिखना तो दो ही अक्षरों का है, वह आगया तो फिर क्या बाकी रह गया। यह सब झगड़े व्यर्थ हैं। विष्णु भगवान् ही सब कुछ हैं। यह सुन कर जल्लादों को बुला कर कहा कि यह दुष्ट मेरे विरोधी को बड़ा और ईश्वर मानता है और मेरी आज्ञा नहीं मानता है। पुत्र नहीं पुत्र रूप शत्रु है;इस कारण इसे मार डालो। यह कह प्रह्लाद को बेतों से पीटा और पहाड़ पर से गिरा देने को भेजा। पहाड़ से बच्चा छोड़ दिया गया, परन्तु कुछ भी चोट नहीं पहुंची। यह देख कर फिर पिता ने अग्नि में रखने को कहा तो उसकी बहिन बोली मैं इसे गोद में ले अग्नि में बैठती हूं, तुम आग लगादो। मैं उठ भागूंगी, इसे छोड़ आऊंगी। यह जल जायगा। हिरण्यकशिपु ने वैसा ही करवाया, परन्तु उसकी बहिन तो जल गई और प्रह्लाद भगवान का नाम जपते हुये निकल आये, इत्यादि अनेक उपायों से भी प्रह्लाद न मरे, तब स्वयं हिरण्यकशिपु ने खड्ग हाथ में ले इसे धमकाया और बोला कि या तो तू इस हठ को छोड़ दे, नहीं तो तेरे विष्णु को बता कहां है? मैं अभी तुझे मारता हूं

देखें वह कहाँ से तेरी रक्षा के लिये आता है ? तब प्रह्लाद ने उत्तर दिया पिताजी ! वह भगवान विष्णु सर्व व्यापक है। तुम में, मुझ में, इस खड्ग में और इस खम्भ में सब में है। यह सुनते ही हिरण्यकशिपु ने खड्ग का प्रहार खम्भ पर करना चाहा कि खम्भ में से एक भयंकर गर्जना निकली और साथ ही वह खम्भ फट कर चीर २ हो गया और उसमें से भयंकर रूप धारण कर भगवान् विष्णु ने नृसिंह बन कर प्रगट हो, उस नास्तिक हिरण्यकशिपु को मार डाला और भक्त प्रह्लाद को बचा लिया।

[यह कथा भागवत के ७ वें स्कन्ध में है।]

देखो बालको ! अपने कल्याण की बात को प्रह्लाद ने इतने कष्ट सहने पर भी नहीं छोड़ी। इसी प्रकार तुम अपनी भलाई और उद्धार की बात का दृढ़ निर्वाह करो।

संग्राम को ठान दशास्य ने स्वयं,
बली सहस्रार्जुन और बालि से।
हुआ पराभूत बुरे प्रकार से,
लड़ो न कोई निज से बलिष्ठ से ॥२२॥

यह सुप्रसिद्ध ही है कि रावण एक महा बली राक्षस हुआ था। उसके पराक्रम से देवता भी भय मानते थे। उस

काल के राजा महाराजाओं को इसने अपने आधीन कर लिया था। यह जिस किसी को बलवान् सुनता, उसी से लड़ने चला जाता था। इसी बात के अनुसार उसने कभी सहस्रार्जुन राजा की प्रशंसा सुनी तो उससे युद्ध करने चला गया। सहस्रार्जुन के हजार बाहु थे, इसी से उसका यह नाम हुआ। रावण और सहस्रबाहु का घोर युद्ध हुआ। उस लड़ाई में सहस्रबाहु ने रावण को बांध लिया और माहिष्मती में ले गया। यह बात स्वर्ग में रावण के दादा पुलस्त्य ने सुनी। वह झट माहिष्मती में आये और उनके सहस्रबाहु की प्रशंसा कर रावण को छोड़ देने की प्रार्थना की। सहस्रबाहु ने उनके कहने से रावण को दया कर छोड़ दिया। रावण मुख नीचा किये वहां से चल दिया। फिर एक दिन वालि का पराक्रम सुन यह उससे भी संग्राम करने किष्किंधा में आया। वहां द्वार पर तारा का पिता तार नाम का वानर बैठा था। उसको इसने कहा कि मुझसे लड़ने को वालि को भेजो। मैं युद्ध करने आया हूं। तार ने उत्तर दिया कि वह वालि संध्या कर अभी आता है, तुम ज़रा ठहरो। वह तुम्हें युद्ध-शिक्षा देगा। इस समय वालि दक्षिण समुद्र पर संध्या कर रहा है। रावण यह सुन पुष्पक विमान में बैठ जल्दी से दक्षिण समुद्र के तीर पर गया। और संध्या करते वालि को देख चुपके से उसे दबाना चाहता था कि वालि ने किसी भी प्रकार यह जान लिया कि कोई मुझे पकड़ने या विघ्न करने आया है। उसने रावण को जैसे गरुड़ छोटे सांप को ऊपर से पकड़ लेता है, वैसे ही झट से पकड़ कर कांख में दबा लिया और सन्ध्या कर्म कर वहां से चारों समुद्रों पर घूम कर सन्ध्या, तर्पणादि नित्य कर्म कर सायंकाल

किष्किंधा में आया, तब वहां आकर अपने बगीचे में पहुंचा। वहां उसने कांख को जरा शिथिल कर देखा तो रावण नीचे पड़ा है और बोला कपीन्द्र तू धन्य है! वालि बोला तू कौन है? रावण ने अपना हाल कहा। तब वालि उसे और सीधा करना चाहता था। यह जान रावण अग्नि साक्षी देकर वालि को अपना भाई बना प्रणाम कर वहां से लज्जा से नीचा मुख कर घर को आया।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में ३४ और ३५ वें सर्ग में है।]

इसका भावार्थ यह है कि अपने से बलवान् से शत्रुता न करो।

विश्वास देके दृढ वृत्र दैत्य को,
सुरेन्द्र ने जाकर सिन्धु-तीर पै।
धोखा अनोखा कर मार ही लिया,
विश्वास कोई रिपु पै नहीं करो ॥२४॥

जब वृत्रासुर ने समस्त देवताओं से संग्राम कर के इन्द्र को कई बार हराया, तब इन्द्र ब्रह्मा से और विष्णु से संमति ले दधीचि की अस्थियों का वज्र बनवाने गया, तब सब देवों को भगवान् ने कहा कि देखो यह दानव वृत्र अजेय है, इसको साम और वंचना से पहिले अपना मित्र बनालो।

पीछे इन्द्र को चाहिये कि इसे धोखे से मारे। प्रबल शत्रु को ऐसे ही मारा जाता है।

इसके अनुसार ही देवता और ऋषि लोग वृत्रासुर के पास गये और उनने इसको बहुत समझाया कि लड़ाई में हानि है, लाभ कुछ भी नहीं। इस लिये इन्द्र और तुम दोनों ही शान्ति से रहो और आपस में मेल करलो। हम इन्द्र की तरफ से कहते हैं कि इन्द्र! तुम से अब द्वेष नहीं करेगा और हम सत्य की शपथ करते हैं कि अब तुम्हारे साथ इन्द्र विरोध नहीं करेगा। यह सुन वृत्र बोला हे मुनीश्वरो! आपकी बात मेरे मान्य है। आपने सत्य का शपथ खा लिया है तो मुझे इन्द्र से मित्रता करना स्वीकार है। यह कह कर वृत्रासुर ने अग्नि की साक्षी से इन्द्र से प्रीति करली और जब कभी मिलते, साथ विहार करते रहते। इसी प्रकार बहुत दिन बिताये। एक दिन समुद्र के तीर पर विहार कर रहे थे। वृत्रासुर विश्वस्त हो ही चुका था। इन्द्र भी मौका देखता ही था कि संध्या का समय देख भगवान् का स्मरण किया। भगवान् गुप्त हो वज्र में आ विराजे। फिर इन्द्र ने समुद्र के फेन में उस वज्र को छुपा दिया और वह धोके से उस समुद्र फेन को उठा कर वृत्रासुर के शिर में ज़ोर से मार के चला गया। वृत्रासुर वज्र की चोट से विह्वल हो भूमि पर गिर कर मर गया।

[यह कथा देवी भागवत षष्ठ स्कन्ध में प्रसिद्ध है।]

इस कारण शत्रु को मीठी बातों में आकर उस पर विश्वास मत करो। शत्रु की प्रत्येक बात में बहुत विचार कर होशियारी के साथ बर्ताव करो।

भरी सभा बीच विशुद्ध नीति से,
श्री कृष्ण ने बोध दिया नितान्त ही।
तथापि दुर्योधन दुष्ट ही रहा,
कुपात्र को ज्ञान सिखाइये नहीं ॥ २५ ॥

दुर्योधन का पाण्डवों से युद्ध करने का दृढ उद्योग देख श्री कृष्ण चन्द्र भगवान् ने दुर्योधन को समझाया कि हे भरत वंशज राजन् दुर्योधन! मैं तुझे हित की बात कहता हूं। तू ने पांडवों को बालकपन से ही अनेक कष्ट दिये हैं तथापि उन धर्म धुरन्धरों ने तुझ पर कोप नहीं किया और तू उनके साथ अब भी अधर्म करता है जो उन्हें राज्य का कुछ भाग भी देना नहीं चाहता। तू इस बात को सच समझ कि अर्जुन के सन्मुख लड़ने वाला तेरी सेना में कोई नहीं है। क्यों तू सब कुटुम्ब का नाश करना चाहता है? तू पढ़ा लिखा है, तू ने शास्त्र भी पढ़ा है, पर इस समय तू मन्द मतियों की सी बातें कर रहा है। तू मेरे कहने को मान कर पांडवों से सन्धि (मेल) कर ले, इसमें तेरा कल्याण होगा, इत्यादि। बहुत प्रकार से उपदेश दिया। इसी प्रकार भीष्म और कर्णादि ने भी समझाया, परन्तु उस क्रूर कपटी दुर्योधन ने

इस उपदेशामृत में से एक बूंद भी न पी; किन्तु बोला हे कृष्ण! क्या तुम मुझे पांडवों के सहाय होकर दबाने आये हो? मेरे बालकपन में मेरे अज्ञान के कारण जो उन्हें राज्य मिल गया था, वह फिर दुबारा अब नहीं मिल सकता है। तुम तो राज्य के कुछ भाग की कहते हो, मैं उन्हें एक सुई के नोक के नीचे आ जावे, उतनी भी पृथ्वी का भाग नहीं दूंगा, तथा उन्हें मारूंगा। तुम बीच में क्यों बोलते हो? इत्यादि, बातें दुर्योधन ने कहीं, भगवान् चले आये। और दुर्योधन ने अपनी मूर्खता के अनुसार ही बर्ताव किया और वह कुटुम्ब सहित नष्ट हो गया।

[यह कथा महाभारत के उद्योग पर्व में १२३ और १२४ वें अध्याय से १२७ वें अध्याय तक है।]

इस कारण कुपात्र को ज्ञान सिखाना योग्य नहीं है। देखलो दुर्योधन को ज्ञान देने का कुछ भी फल नहीं हुआ।

महा मही नायक अग्निवर्ण ने,
नितान्त ही दुर्विषयानुरक्त हो।
शरीर खोया अपकीर्ति भी सही,
अतीव कामान्ध बनो न भाइयो ॥२६॥

श्री राम-राज्य के पीछे कुश के वंश में सुदर्शन का पुत्र अग्निवर्ण नाम का राजा हुआ। यह तरुणाई पाकर महाकामी

हुआ। काम संभोग से इसका एक क्षण भी रहित न बीतता था। वेश्याएं इसके जनाने में बहुत रहती थीं। अपनी पत्नियों और वेश्याओं के साथ ऋतुऋतु में कालोचित परिभोग विहार लीला करता हुआ यह जनाने में ही दिन और रात व्यतीत करता रहता। राज्य का भार मंत्रियों पर डाल कर यह एकांत विषय सेवी ही रहा। यह इतना कामासक्त हो गया था कि कभी आवश्यक कार्य के लिये मंत्रियों ने मिलना चाहा और जनाने में इसको निवेदन कराया तो यह कामी राजा एक झरोखे की खिड़की से अपना एक पद ही निकाल कर उन्हें (मंत्रियों) को दर्शन दे देते, किन्तु स्वयं बाहर आने की या उठ कर झरोखे में बैठ कर मिल लेने की या प्रजा को दर्शन देने की इन्हें फुरसत ही नहीं रहती थी। यह बात देख प्रजा में चारों ओर इसकी निन्दा होने लगी, पर इसने कुछ न सोचा। यह नृत्य और गायन कला में महा प्रवीण होगया था। इसकी गोदी वीणा से और वनिता से कभी खाली न हुई। ऐसे कामान्ध होने का यह फल हुआ कि जनता भी नाराज़ रही, राज्य की संभाल न हुई, स्वयं शीघ्र ही (तरुणावस्था में ही) राज यक्ष्मा (क्षय) रोग से पीड़ित होकर दिनों दिन कमज़ोर होता हुआ, थोड़े ही दिनों में समाप्त हो गया। फिर प्रजा ने इसकी रानी को जो गर्भवती थी, राज सिंहासन पर बिठाया।

[यह कथा रघुवंश के १६ वें सर्ग में है।]

इस कारण प्यारे बालको! काम के खिलौने बन जाना अपनी आयु-रूप रुई के ढेर पर चिनगारी डालना है। यह जान काम से बहुत सावधान रहो।

विराग वाले मतिमान्मरीचि को,
स्वच्छन्द में लाकर काममंजरी।
बिगाड़ के भी झट दूर हो गई,
बनो न वेश्या प्रणयी कभी सखे ॥२७॥

अङ्गदेश में गंगा तीर पर चंपा नगरी में एक प्रसिद्ध सुन्दर मन मोहन रूपवाली काम मंजरी नाम की वेश्या थी। वह चंपापुरी के राजा सिंहवर्मा की वेश्याओं में से एक वेश्या थी। राज सभा में एक दिन किसी और वेश्या ने इसे कहा कि इस यौवन से कैसी फूल रही है, जैसे मरीचि महा मुनि ही को वश कर आई है। यह सुन काम मंजरी ने कहा "यदि मरीचि को वश करलूं, तो क्या पण करनी है ?" तब दूसरी वेश्या ने कहा ! कि मैं तेरी दासी होकर रहूं। काम मंजरी उस बात को स्वीकार कर, वहां से चल कर धूर्तता और गहरी चालाकी करने का विचार कर उदासीन वेश बना कर मरीचि के आश्रम में आई। ये मुनि बड़े विद्वान् वैराग्य पथ में प्रवीण थे और अङ्गदेश में चम्पानगरी के बाहर उद्यान में रहते थे। काम मञ्जरी वहां आकर मुनि के चरणों में पड़ कर बालों से धूल हटाती हुई पूर्ण भक्त सी हो गई और रोने लगी, संसार से अपराग दिखाने लगी, ज्ञान चर्चा करने लगी। इतने में उसकी माता आदि झूठ मूठ रोष भय दिखाते हुए उसे समझाने आई। तब उसने यह कहा कि या तो यह महाराज मरीचि मुझे अपने आश्रम

में रहने देकर धर्माचरण करने देंगे, नहीं तो मैं तो संसार को अनित्य समझती हूं, अग्नि में प्रवेश कर लूंगी—मुझे इस वृत्ति से घृणा है। मुनि ने उसका ऐसा हठ और संसार में अपराग देख बहुत समझाया, पर उसने अनेक नम्र वाक्यों से वहां रहना निश्चित कर ही लिया। धर्म और ज्ञान के हठ को देख मरीचि ने उसके माता पिता आदि जनों को कह दिया; कि अच्छा कुछ दिन ठहरने दो, समझ जायगी तब ले आना। यह सुन सब चले गये। काममञ्जरी वहां रहने लगी। अब तो वह स्नानादि कर चीर वसन पहरे हुये मुनि की सेवा, समिधि, जलादि और फल पुष्पादि के लाने से करती रही और बीच २ में अपने हाव भाव मनोहर विलासों का प्रयोग भी करती रही। वह पढी लिखी विदुषी थी। एक दिन धर्म अर्थ काम मोक्ष—इन विषयों का विवेचन करती हुई, उसने काम को सर्वोपरि बताने का यत्न किया और बातों से सेवाओं से मुनि का मन धीरे २ उसमें फंसता गया। कुछ दिनों में वह उसका इतना वशीभूत हो गया कि वह कहती वैसा ही करता। यह देख काम मञ्जरी ने सोच लिया कि यह मुनि अपने चक्कर में आ गया। तब उसे एक दिन चम्पा नगरी में ले जा कर अपने घर ले गई और शहर में डोंडी पिटवादी कि कल कामोत्सव होगा। उस भोले महात्मा को उसके कपट का कुछ भी पता न चला, वह इसके प्रेम की पुतली होगया। कामोत्सव में राजा के संमुख इनको साथ ले गई और उस वेश्या को जो इस से शर्त कर चुकी थी दिखला दिया कि देख मैंने मरीचि को अपना सेवक बना लिया है। यह देख वह वेश्या इसकी दासी हुई। फिर सभा से उठ वह काम मञ्जरी मरीचि को नगर बाहर ला

कर हाथ जोड़ बोली, भगवन् प्रणाम है, यह रास्ता लीजिये। अपने आश्रम को जाइये। यह सुनते ही वह मुनि एक दम चौंक उठा और कहने लगा—हैं! हैं! यह क्या होगया। वह तेरा असीम स्नेह, निश्चल प्रेम, दृढ भक्ति कहां गई? तू क्यों मुझे छोड़ती है? इत्यादि—तब काम मञ्जरी ने सब हाल सुना दिया और वह उसे छोड चली गई। मुनि इधर उधर विरह में भटकते रहे।

[यह कथा दशकुमार चरित के द्वितीयोच्छ्वास में है।]

इस कारण वेश्या से प्रेम नहीं करना; कारण वेश्या किसी की नहीं होती। वह तो अपने मतलब धन और सुख से प्रेम रखती है। स्वार्थ सिद्ध हुआ कि वह विष के समान सेवन करने वालों को नष्ट करने को तैयार हो जाती है। देखलो ऊपर की कथा में मरीचि को काम मञ्जरी ने कैसा कर दिया।

माया भरे शकुनि ने निज जाल में ले,
जूआ खिलाकर, युधिष्ठिर को छलों से।
ला कूट दाव पर, राज्य सभी हराया,
सर्वस्व साधु जन का छल से न छीनो।३८।

गान्धार देश का राजा शकुनि दुर्योधन का मामा था।

वह जुआं खेलने में बड़ा चतुर और चालाक था। कपट के पाशे फेंकने में इसकी बुद्धि बहुत काम करती थी। जब राजसूय में गये हुये दुर्योधन को युधिष्ठिर की राज्य लक्ष्मी देख कर बड़ी डाह हुई और वह बहुत पछताया, ईर्ष्या में भर कर सभा देख कर चला गया और शकुनि से बोला मामा जी! मैं तो अब जीता न रहूंगा। युधिष्ठिर की दैदीप्यमान राज लक्ष्मी को देख मेरे कलेजे में आग लगती है, मुझ से देखा नहीं जाता। या तो इसका कोई उपाय करो, जिससे पाण्डवों की राज लक्ष्मी मुझे मिले और मैं इनसे मेरे उपहास का वैर लूं। तब शकुनि ने उसे राय दी कि तुम एक काम करो। राजा युधिष्ठिर को जुआ खेलने का शौक़ तो है, पर वह खेल नहीं जानता है, इस कारण उन्हें जुआ खेलने को बुलालो और तुम्हारी तरफ़ से पाशे फेंक कर कपट दाव में उन्हें लेकर वह दीप्यमान लक्ष्मी यहां मंगवालूंगा। तुम सब फिक्र छोड़दो और यह प्रयत्न करो। जुआ खेलने की आज्ञा धृतराष्ट्र से दिलादो, तब मैं उससे जुआ खेलूंगा। दुर्योधन ने पिता से कहा कि आप युधिष्ठिर आदि पाण्डवों को यहां बुला कर जुआ खिलाइये, जिसमें मैं उन्हें जीत कर उनकी राज्य लक्ष्मी लूं। धृतराष्ट्र ने बहुत समझाया तब दुर्योधन ने कहा कि या तो आप जूआ होने का प्रबन्ध करो नहीं तो मैं अग्नि में पड़ जाऊंगा या विष खालूंगा। यह सुन धृतराष्ट्र ने होनहार प्रबल जान पुत्र प्रेम के वश हो विदुर को भेज पाण्डवों को बुला लिया, और जुआ के खेल का प्रबन्ध किया। उसमें दुर्योधन की ओर से शकुनि ने कूट कपट के पाशों को फेंक फेंक कर युधिष्ठिर का सारा धन छीन लिया। शनैः शनैः हाथी, घोड़े, रथ, वस्त्र, भूमि,

दास, दासी भी हार कर जूआ से न हटे, अन्त में चारों भाइयों को और सती द्रौपदी को भी कूट दाव में छीन लिया। इस प्रकार शकुनि ने राजा युधिष्ठिर और पाण्डवों को हरा कर सब धन छीन लिया।

[यह कथा महाभारत के सभा पर्व में प्रसिद्ध है]

जिस प्रकार शकुनि ने महात्मा युधिष्ठिर को धोखा देकर सब धन छीन लिया इस प्रकार छल से किसी का कुछ भी न लो। छल करने वाले पापी होते हैं। पापियों के पाप का भण्डा अन्त में फूट ही जाता है, और वे सदा के लिये दुखी हो जाते हैं, इसमें सन्देह न समझो।

रानी प्रिया भर्तृहरि प्रवीर की,
पूर्णानुरागी पति से स्वचित्त को।
हटा, हुई प्रेम निमग्न, दास में,
स्त्री का न विश्वास नितान्त ही करो॥ २९

महाराजा भर्तृहरि भारत वर्ष में प्रसिद्ध राजा हो गये हैं। इनके पिंगला नाम की रानी थी। वह बहुत रूपवती थी। राजा उस पर बहुत प्रेम करते थे और इतना विश्वास उस पर करते थे जितना किसी पर नहीं। उसे अपने प्राणों की मूर्ति समझते थे। एक दिन भी राजा को उसके बिना चैन नहीं पड़ता

था, भाग्यवश एक साधु ने राजा को अमृत फल दिया। इसका खाने वाला सदा जवान रहता है, यह भी कहा। राजा ने प्रेम की पुतली अपनी रानी की तरुणाई स्थिर रखने की इच्छा से वह फल रानी को दे दिया। रानी पिंगला संस्कार वश एक दास को जिससे वह आसक्त हो रही थी (राजा को इस बात का ध्यान न हो सका) उस फल को दे दिया। वह दास भी एक वेश्या पर रीझ कर आसक्त हो गया था, उसने वह फल उसे लेजा कर दे दिया। वेश्या ने राजा की जवानी कायम रखने की इच्छा से और अपनी पूछताछ होती रहने की वाञ्छा से वह फल राजा को ला सौंपा। राजा ने उसी फल को पहचान बहुत आश्चर्य किया। और वेश्या से पूछा तो पता लगा कि एक दास ने जो आपकी पिंगला रानी का माना हुआ प्रेमी है मुझे लाकर दिया है। सुनते ही राजा ने बहुत चिन्ता कर इस बात का दृढ निश्चय कर यही सिद्धान्त निकाला कि स्त्रियों का विश्वास कर बैठना वास्तव में कभी हानिकारक होता है, इसमें सन्देह नहीं। देखो, मेरी पत्नी को मैं कितना प्यार करता हूं इतने पर भी वह दास में प्रेम करती है और वह दास भी उसमें अटल-प्रेमी नहीं। वह वेश्या पर आसक्त है। वह वेश्या भी उससे गाढ़ प्रेम न कर मुझ से प्रीति करती है, यह सब काम के कृत्य हैं, इस कारण इस काम को और उसको (रानी को) तथा दास को इस वेश्या को और मुझे भी धिक्कार है! यह कह कर वैराग्य का आसरा लिया और भर्तृहरि ने तीन शतक बनाये। उनमें पहले नीति शतक में दूसरे पद्य में अपना यही हाल वर्णन किया है। भर्तृहरि ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

[यह कथा भर्तृहरि शतक के "यां चिन्तयामि;" इस पद्य से प्रसिद्ध हुई है।]

सच बात है प्यारे भाइयो! स्त्रियों पर नितान्त विश्वस्त हो सब कार्यों को दूर कर बैठना वास्तव में हानिकारक हो जाता है। उनकी संभाल की पूर्ण आवश्यकता रक्खो।

उत्तानपाद सुत उत्तम नाम वाला,
आखेट खेल-रत होकर यक्ष द्वारा।
मारा गया गहन कानन भूमि बीच;
खेलो शिकार न कभी वन में इकेले ॥४०॥

महाराजा उत्तानपाद का दूसरी रानी सुरुचि से पैदा हुआ पुत्र उत्तम नाम का था। वह शिकार का बहुत शौकीन था। एक दिन वह अकेला ही वन में दूर शिकार के लिये निकल गया। सेना आदि सहाय कुछ भी साथ न ले गया। जाते २ बहुत दूर तक भी शिकार न हाथ लगी। तब यह हिमालय पर पहुंच गया। वहां यक्ष ने इसे लड़ कर मार डाला। इस कारण इकेला पुरुष ऐसे मौकों पर भीषण स्थानों में शिकार खेलने न जावे। यह बात प्रायः राज पुत्रों में पाई जाती है, इस कारण उन्हें इस बात पर ध्यान देकर समझ लेना चाहिये कि शिकार को अकेला न निकला करै।

होके जितेन्द्रिय महा हनुमान वीर;
दुःसाध्य भी बहुत कार्य तुरन्त साध।
सम्पूज्य हैं जगत में चिरजीवि भी हैं।
यों ब्रह्मचर्य रख हों सब दीर्घ जीवी॥४१॥

श्री हनुमान की जितेन्द्रियता से किसको परिचय न होगा? मारुति महावीर के ब्रह्मचर्य को कोन नहीं जानता होगा? इस हनुमान ने बालपन से (जन्म तब से) कभी ब्रह्मचर्य को खण्डित न होने दिया है। इस ब्रह्मचर्य का प्रभाव ही है कि वे इतने कठिन २ कार्यों को सहज ही कर डालते थे। समुद्र का उलांघना, द्रोणागिरि का उखाड कर ले आना क्या कोई सहज और मानवी शक्ति के कार्य हैं? नहीं ये कार्य ब्रह्मचर्य रक्षण शक्ति के हैं, यहां तक इनकी महिमा लिखी है कि त्रेता युग में ऐसा कोई वीर न हुआ कहीं यह भी वृत्तांत मिलता है कि इनके पसीने की विन्दु से भी मगरी के पेट से महा बलवान सन्तान हुई, वह मकरध्वज नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब ये पाताल में अहिरावण के यहां राम लक्ष्मण को लेने के लिये लिये गये तब वहां द्वार पर मकरध्वज से भेंट हुई और युद्ध भी किया। पीछे आपस में पूछताछ से मालूम हुआ कि यह मेरे ही ब्रह्मचर्य के जोशीले पसीने के बिन्दु का तेज है। पीछे उसे पूछ से बांध करके अन्दर गये—अहिरावण को मार, राम-लक्ष्मण को उठा लाये। रामायण में तुलसीदास जी ने यह कथा लिखी है;—बाल्मीक रामायण में इस महावीर के

अद्भुत २ पराक्रमों का वर्णन मिलता है, जिन्हें पढ़ने से भी रोम खड़े हो जाते हैं। ऐसा ब्रह्मचर्य का प्रभाव है। इस लिये बालको! तुम्हें चाहिये कि जहां तक हो ब्रह्मचर्य की पूर्ण रक्षा करो। आयुर्वेद शास्त्रकारों ने भी यह लिखा है कि (शुक्र मूलंहि जीवनम्) वीर्य ही जीवन का मूल है, इस की रक्षा करना ही जीवन को सुखी करना है। ब्रह्मचर्य से दीर्घायु प्राप्त होती है, इस में सन्देह नहीं।

शब्दानुसार शर का करके प्रयोग,
आरण्य में श्रवण नाम कुमार मार।
दुःखी हुआ दशरथ क्षितिपाल, देखो,
कोई करो न तुम कार्य विना विचारे ॥४२

महाराजा दशरथ एक बार शिकार खेलने को अयोध्या के जङ्गलों में गये, वहां जाते हुये राजा दशरथ ने एक तालाब पर होते हुए, पानी भरते हुए, घड़े की आवाज़ सुनी और यह जान लिया कि कोई गज या बाराह तालाब के सहारे बोल रहा है, उस का पूरा विचार नहीं किया और शब्द बेधी बाण को धनुष पर चढ़ा जिधर से आवाज़ आई उधर ही छोड़ दिया (महाराज दशरथ को शब्दवेध का भी बहुत अच्छा अभ्यास था) वहां एक मुनि का आश्रम था उस का पुत्र श्रवण नाम का था, वह उन के लिये जल लाने तालाब पर आया था। घड़ा भरने

का शब्द हुआ, उस पर राजा का बाण आकर पड़ा। वह बेचारा बिंध गया और मूर्छित हो गिर पड़ा। अन्त में वह पीड़ा के मारे राम राम कह के गिरा था। राजा उस मानव शब्द को सुन तुरन्त वहां पहुंचा और देखा तो मुनि कुमार है। राजा उसे देख पछताया और उससे उसका हाल जान वह घड़ा उठा कर जल भर श्रवण के अन्धे माता—पिता के पास जा पानी पिलाया पर बोला नहीं। जल पीने के पीछे राजा ने सब हाल कह कर शोक प्रगट कर उनसे क्षमा मांगी। परन्तु पुत्र-वध के दुःख से दुखित उन अन्धों से न रहा गया और राजा को शाप दे ही दिया कि जैसे हमें पुत्र शोक दिया है, वैसे तू भी पुत्र—शोक से दुखी होकर मरेगा। राजा दशरथ उस शाप के अनुसार ही राम के वियोग में दुखी होकर मरे। देखो, विना विचारे कार्य करने का ऐसा बुरा फल होता है।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण में है। रघुवंश में भी है। महा भारतादि में भी मिलती है।]

इस कारण कभी विना विचारे कार्य को मत करो। विना सोचे कार्य करने से उमर भर पछताना पड़ता है।

लोक प्रवाद सुन राघव ने सगर्भा,
निर्दोष भी स्वदयिता जनकात्मजा को।
छोड़ी तुरन्त वन में कुछ भी न सोचा,
संसार निन्दित करो मत कार्य कोई ४२

श्री रामचन्द्र जब रावण का वध कर अयोध्या को वापिस आकर राज्य करने लगे, तब कुछ दिनों के पीछे एक दिन भद्र दूत से कहा कि नगर की खबर लाओ, क्या नई बात है? वह बोला महाराज! मैं जहां तहां सुन चुका हूं, एक नई बात है, और सब कुशल मंगल है। राम ने पूछा वह क्या? वह बोला भगवन्! नगर के लोग आपकी ये बातें कह रहे हैं, कि सीता को जो रावण के गोद में गई और इतने दिन वहां अशोक वाटिका में, जो उसके जनाने का बाग है, रही, झट से स्वीकार कैसे करली। यह काम राम ने अच्छा नहीं किया। इत्यादि बातें आपके विषय में बनाते हैं और कुछ नहीं। राम ने उससे यह बात सुन तुरन्त लक्ष्मण को बुलाया और कहा कि मैं मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाता हूं। प्रजा में सब लोगों को जो विरुद्ध और दूषित दीखता हो वह कर्म मुझे नहीं करना चाहिये। इस कारण जो सीता प्रजावर्ग से दूषित मानी गई है, वह चाहे मेरी तरफ से अग्नि से शुद्ध करली गई तो भी त्याग के योग्य ही है। इस लिये हे भाई लक्ष्मण! तुम इसे ले जाओ। यह गर्भवती है। इसे रथ में बिठा कर वन में छोड़ आओ। लक्ष्मण ने मन में तो बुरा ही समझा, परन्तु कह नहीं सके। और जो आज्ञा, कह कर सीता को रथ में बिठा कर उसके चाहे हुए सभी वनों की सैर कराते हुए गंगा तीर पर वाल्मीकि आश्रम के पास ले जा उतारा और वहां सीता को सच्चा हाल कह सुनाया। सीता अपने विषय में प्रजा की बात और रामकृत त्याग सुन दुःखित हुई। तब लक्ष्मण उसे समझा कर वहीं छोड़ रथ ले चले आये। फिर सीता अपने भाग्य को दोष दे रही थी कि वाल्मीकि मुनि के शिष्य स्नान करने को आये

हुओं ने इसे देख मुनि से जा कहा । वाल्मीकि ने वैदेही तथा राघव महाराज की पत्नी जान और ध्यान योग से सब होनहार को पहचान, कर इसे अपने आश्रम में ले जाकर रखी ।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में है ।]

इस कारण लोक निन्दित कर्म भी मनुष्यों को नहीं करना चाहिये । लोक निन्दा से महिमा घट जाती है, अपयश होता है । अपयश होना भले पुरुषों को मौत से भी बढ़कर है ।

नितान्त ऊंची करता तपस्या,
श्रीराम से शूद्र हुआ विनिष्ट ।
बुरा भला है कुछ भी न सोच,
वर्णानुसारी सब धर्म साधो ॥ ४४ ॥

श्री रामचन्द्र महाराज के राज्य काल में एक दिन एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया । उस ब्राह्मण ने उस मृतक पुत्र को राम के राज द्वार पर ला रखा और विलाप करने लगा कि मेरा पुत्र मर गया, इसमें कोई न कोई राजा का ही पाप कारण है, क्यों कि राम-राज्य में आज तक किसी का पुत्र पिता के सन्मुख नहीं मरता है। फिर यह मर गया इस लिये कोई न कोई राम का पाप ही है । यह सुन रामचन्द्र ने उसे बुलाया और उसकी बात सुन विचार कर वशिष्ठादि मुनीश्वरों को

बुला कर पूछा तो उनमें से नारद ने कहा कि राजन् ! तुम्हारे देश में किसी न किसी ने वर्ण धर्म का अपव्यय किया है। इस दोष से यह बालक मर गया है, इसका यत्न करो तो यह जीवित हो जाय। रामचन्द्र ने यह बात सुनते ही पुष्पक विमान को याद किया। पुष्पक विमान के आते ही उस पर बैठ दिशाओं में तलाश किया तो विन्ध्याचल के पास शैवल पर्वत के पास एक तालाब पर नीचे मुख लटकाता हुआ एक तपस्वी तपस्या करता हुआ मिला। रामचन्द्र ने उसे पूछा तुम कौन हो, क्या कर रहे हो ? सच बताओ। वह बोला महाराज ! मैं शूद्र हूं, शम्बूक मेरा नाम है और इस देह से ही देवतापन पाने के लिये उग्र तप कर रहा हूं। रामचन्द्र ने उसकी यह बात सुन खड्ग निकाल तुरन्त उसका शिर काट डाला। इस वृतान्त को देख देवताओं ने पुष्प वर्षा राम पर की और जय कार किया। इधर वह शूद्र मरा कि उधर अयोध्या में वह ब्राह्मण का पुत्र जीवित हो उठा !

[यह शम्बूक की कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में प्रसिद्ध है।]

इस कारण वर्ण धर्म का व्यत्यय (रद्दो बदल) नहीं करना चाहिये कि निज देश में कोई वर्ण—धर्म की मर्यादा न टूटने पावे। धर्म के अपचारों से ही प्रजा में उपद्रव, अकाल, मृत्यु आदिक होते हैं। यदि चारों वर्ण वाले भी निज निज धर्मों पर आरूढ़ हो जावें और धर्म व्यत्यय को कदापि न करें तो निःसन्देह भारतवर्ष में सब प्रकार से सुयुग होजावें और सब आपत्तियां दूर हो जावें।

महीपति श्री नल ने जुआ में,
आसक्त हो राज्य समस्त खोके।
अनेक भोगे दुख जंगलों में,
जूआ न खेलो इस भांति कोई॥ ४५॥

महाराज नल! निषध देश का राजा था, इसको जुआ खेलने का शौक हो गया था। भाग्यवश एक दिन पुष्कर ने इसके साथ जुआ खेला और नल हारता गया। उस समय में पुरवासियों ने तथा दमयन्ती ने बहुत समझाया, तथापि नल की रुचि द्यूत खेलने से न हटी, और वह उस क्रीड़ा में पुष्कर के साथ इतना आसक्त हो गया कि ज्यों हारता त्यों ही उसके दाव पर अधिक २ धन लगाने की इच्छा होती रही। अन्त में राजा नल अपने सब राज्य को जुआ में हार गया और एक दमयन्ती ही बाकी बची, तब पुष्कर ने इसे कहा कि अबकी तुम दमयन्ती को भी दाव पर लगादो, तुम्हें ध्यान है मैंने यह सब राज्य तुम्हारा जीत लिया है। यह सुन नल को चेत हुआ और वह अपने कपड़े ज़ेवर उतार कर एक धोती मात्र पहरे हुए वहां से उठ दमयन्ती को साथ ले निकल गया। उस देश में पुष्कर ने अपना राज्य जमा कर यह हुक्म दे दिया था कि जो नल का इस समय सत्कार मान आदि करेगा, वह मेरा दोषी होगा, मैं उसका वध करूंगा। इस कारण उस देश प्रांत में भी नल को कहीं टिकने को जगह न मिली। तब वह निषध देश दूर जङ्गलों में भूखा प्यासा हो गया। वहां तीन

दिन तो पानी से बिताये। फिर एक दिन सोने के रंग वाले पक्षियों को बैठे देख इसने चाहा कि इन्हें ही मार कर पेट भरूं, यह विचार अपनी धोती उतार उन पक्षियों को पकड़ने के लिये उन पर धोती डाली कि वे पक्षी उस वस्त्र को भी लेकर उड़ गये। नल को यह दशा देख बहुत चिन्ता हुई। अब नल नंगा रह गया, बहुत लज्जा में भर गया, परन्तु क्या करे! फिर खड्ग से दमयन्ती की साड़ी में से आधा टुकड़ा काट कर आपने बदन ढांका। वहां ऐसा कष्ट उठाया कि क्या कहा जावे। उस दशा में दमयन्ती के बहुत समझाने पर भी विदर्भ देश को न गया और दमयन्ती को सोती हुई छोड़ भागा। वह बेचारी बहुत दुःख पाने लगी। उधर, नल ने भी अनेक प्रकार के कष्ट भोगे।

[यह कथा महा भारत के बन पर्व में है।]

इस कारण प्यारे भाइयो! जुआ ऐसा बुरा कर्म है कि इसका जरा सम्बन्ध हुआ कि ये मन पर बहुत असर कर लेता है, फिर नहीं छूटता है और छूटता है तो सर्वस्व छीन कर छूटता है, इस लिये इस कुकर्म से बचो।

राजा दिलीपादिक वृद्धता में,
पुत्रादिकों पै रख राज्य भार।
सुयोग को साध हुए विमुक्त,
बनो चतुर्थाश्रम में विरागी ॥ ४६ ॥

सूर्यवंश में प्रायः बहुत से राजा ऐसे हुए हैं कि जिनने बालपन में विद्या पढ़ी थी, यौवन में धर्मानुकूल विषय भोग करते हुए राज्य प्रजा को संभाला था, बुढ़ापे में मुनिवृत्ति धारण की थी और अन्त में ईश्वर में योग के द्वारा शरीर छोड़ मिल गये। इसी प्रकार की चर्या सबकी थी। जैसे—दिलीप, रघु, अज आदि। इससे यह सार निकलता है कि वे राजा महाराजा हमें यह सिखा गये हैं कि चौथे आश्रम में तो राग-द्वेष छोड़ कर परमात्मा का ध्यान करना ही चाहिये। ऐसा करने से वर्णाश्रम धर्म की रक्षा होती है और अपना कल्याण भी निःसंदेह होता है। इस लिये चतुर गृहस्थाश्रम में इस रीति से निर्वाह करें कि चौथे आश्रम की अवस्था प्राप्त होते ही वैराग्य में मन लग जावे और ममता का बन्धन सहज ही निकल जावे। ममता के छूटे बिना मुक्ति, शाँति दोनों ही नहीं मिल सकती हैं। इस कारण यह उपदेश है।

श्री शंकराचार्य सुसाधु होके,
कुबुद्ध पाखंड हटा, स्वधर्म
जचा गये भारत भूमि बीच,
यों धर्म उद्धार करो कराओ ॥ ४७ ॥

महात्मा शङ्कराचार्य को कौन नहीं जानता होगा ? इस वेदांत निधान ने छोटी अवस्था में ही सब विद्याएं

पढ़ली थीं। और, छोटी उमर में ही ये सन्यास दीक्षा ले भारत वर्ष के सनातन धर्म की रक्षा करने को कमर बांध चुके थे। उस समय ३३ करोड़ बौद्ध थे। इन बौद्धों ने वेद धर्म को खण्डित कर अपना नवीन बौद्ध धर्म नाम का धर्म, जिसमें वेद का खंडन है, ईश्वर कुछ पदार्थ नहीं है! पदार्थ स्वरूपावस्था को बुद्धि परिणाम ही मानते हैं। न ईश्वर या और कोई जगत्कर्त्ता है, न हर्त्ता है। झूठे हैं ये वेद, यज्ञ, याग, देव पूजादि इत्यादि, रूप स्वतन्त्र मार्ग चला दिया था। उस प्रचंड समुदाय में इन एक ही शङ्कर स्वामी ने अपने विज्ञान सूर्य को प्रकाश कर संसार के अज्ञान और पाखंड रूप अंधकार का का तुरन्त नाश किया। जहाँ तहां शास्त्रार्थ कर कर बौद्धों को इनने जीता है। असंख्य बौद्धों को जो पाखंडियों के बहकाने में आकर सनातन धर्म को छोड़ बैठे थे, उन्हें फिर सनातन धर्मानुयायी-बना, जीवन्मुक्त बना गये। दिशा दिशाओं में अपना मत स्थापन कर राजा महाराजाओं को अपना शिष्य बना गये। गांव २ में भगवन्मंदिर बनवा गये, यज्ञशालाएं खुलवा दीं, वेद-पाठ की प्रवृत्ति करादी। विशेष क्या कहें, संसार में धर्म का प्राचीन युग कर गये। और भारतवर्ष ही में क्या चीन, जापान आदि देशान्तरों में भी इनने धर्म की ध्वजा रोपी थी। उनका ही प्रभाव है कि आज भारतवर्ष में बौद्ध मत का नाम हीं सुना जाता है। हां कुछ बचे खुचे लोग जो उस समय देशांतर चले गये थे, वे चीन, जापान में रहे। उनके अब भी बौद्ध—धर्म माना जाता है, पर विशेष नहीं।

इनके बनाये ग्रंथ ऐसे २ गम्भीर आशय के हैं कि जिनके अनेक भाष्य टीका टिप्पणियां बनती ही जाती हैं।

भारत ही क्यां देश देशांतरों में इनके ग्रंथों का आदर होता है। वे धर्म-ग्रन्थ माने जाते हैं। ३२ वर्ष के लगभग ही संसार में रहे, इस उमर में भी सैकड़ों ग्रन्थ छोटे बड़े लिख कर, भारत वर्ष का इतना उपकार कर गये हैं कि यह देश और धर्म प्रलयान्त और जन्मजन्मांतर में भी उनका ऋणी रहेगा।

[इनका चरित विशेष देखना हो तो शंकरादिग्विजय ग्रन्थ देखो]

प्यारे बालको! तुम भी विद्या पढ़ कर देश का इस प्रकार उपकार करो। केवल पेट भरना सीख कर निश्चिन्त मत हो बैठो-देश और धर्म का उद्धार करो।

विद्वान भी भरत दे अनुराग पूर्ण,
प्राणान्त काल मति को मृग बाल बीच।
पीछे द्वितीय भव बीच हुए कुरंग,
लोगो रखो मति सदा भगवान् ही में ॥४८॥

राजर्षि श्री भरत परम भागवत हुए हैं। इनने अनेक यज्ञों से भगवान् को प्रसन्न किया। इनने धर्म दृष्टि से ही प्रजा का पालन किया। ये विशेष कर भगवद्भक्ति योग में ही लीन रहा करते थे। बढते २ उनके हृदय में भगवान् की भक्ति ने अपना आसन दृढता से जमा लिया। तब राजर्षि भरत ने

भी राज्य भार से विराग धारण कर पुलह ऋषि के आश्रम के पास उपवन में कन्द मूल फलों से और पुष्पों से, भगवान् का यजन कर शान्त चित्त हो एकान्त वास स्वीकार कर लिया था। एक दिन नदी पर जा कर शौच स्नानादि कर्म कर ध्यान कर रहे थे कि एक हरिणी गर्भवंती प्यास के मारे व्याकुल हुई आई। वहां आकर जल पीने लगी कि पास ही से सिंहकी गर्जना का नाद सुनाई पडा। सिंह गर्जना सुनते ही वह स्वभाव से ही घबराती हुई जोर से उछल कर नदी को लांघती थी कि भय और वेग के कारण उसका गर्भ गिर गया। वह परली पार जा कहीं पडकर मर गई। उस बच्चे को नदी के प्रवाह में पड़ा देखा तो राजर्षि भरत को दया आई, और इनने उसे उठा लिया तथा अपने आश्रम मे ला रखा। वहां उसे पालन करने लगे। आप उसे गोदी में रखते और दूध पिलाते। कुछ दिनों बाद तृण के योग्य हुआ तो उसे तृण दूर्वादि खिलाने लगे। उस मृग के बच्चे में ऐसा स्नेह इनका हो गया, कि वे उसे देखे बिना क्षण भी नहीं रहते थे। ध्यान से तो बुद्धि इनकी हट गई और उस मृगी के बच्चे मे दृढ हो बैठी। दिनों दिन वह मृगी का बच्चा चलने फिरने लग गया। एक दिन यह तो कार्य में लगे थे और वह मृग शिशु हरिणों के झुण्ड को जंगल में चरते देख उनमें मिल कहीं का कहीं चला गया। कुछ देर तो मुनि ने प्रतीक्षा की। फिर तो बहुत व्याकुल हो पछताने लगे कि हाय उसे कोई वृक तो न ले गया इत्यादि। वे ऐसा विलाप करने लगे कि मानो किसी का पुत्र या मित्र या प्रिया अथवा धन नष्ट हो गया हो और वह उसके लिये रो रो कर विलाप करे वैसे। इस दुःख से दुखो हुये भरत राजर्षि का अन्त समय

समीप आ गया, पर वे उसे न भूले। एक दिन उस मृग शिशु के ध्यान में बैठे थे कि शरीर छूट गया तो उसी भावना के वश दूसरे जन्म में मृग की योनि पाई।

[यह कथा महाभारत के ५ वें स्कन्ध में है।]

इस लिये प्यारे भाइयो! निश्चल रूप से अपनी बुद्धि को सदा भगवान् में ही लगाना अच्छा है, क्यों कि "अन्त मता सो गता" "अन्ते मतिः सा गतिः" अन्त में जो बुद्धि होगी, वह गति भी होगी, इसमें सन्देह नहीं।

श्री कृष्ण को पाकर के सहाय,
स्व जन्म को अर्जुन ने सुधारा।
धर्मार्थ कामादिक सिद्धि पाई,
समर्थ का आश्रय लो सदा ही ॥४६॥

यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि अर्जुन को श्रीकृष्ण की सहाय न होती तो अर्जुन का न जाने क्या हाल होता। परन्तु अर्जुन ने पहले से ही भगवान् में अपना विश्वास जमा कर प्रेम पूर्ण रीति से दृढ कर लिया था और अपना आचार विचार भी धर्म से अनुकूल रखा, इस कारण भगवान् उसकी सहाय हुये। अर्जुन ने भगवान् का ऐसा अद्भुत और समर्थ आश्रय लिया कि उसके सब काम सिद्ध ही हुए। सब आपत्तियां दूर

हुई और प्राण—संकट में भी रक्षा ही हुई, और सर्वत्र विजय ही हुआ। यह अर्जुन के अनन्य आश्रय का ही फल है कि महाभारत की लड़ाई में भगवान् उसके सारथि (रथ हांकने वाले) बन गये और उसे जिता दिया। इत्यादि—अनेक बातें अर्जुन ने भगवान् के आश्रय से सिद्ध की थीं।

[उनका सब हाल महा भारत ग्रन्थ में विस्तार से लिखा है]

इस कारण समर्थ पुरुष का आसरा लेना चाहिये क्यों कि वही लाभकारी होताहै। असमर्थका आसरा नहीं लेना चाहिये। असमर्थ को तो आसरा देना चाहिये।

देखो अजीगर्त कुलोभ मग्न हो,
सौ धेनुएं लेकर बेच पुत्र को।
सन्ताप को प्राप्त हुआ अतीव ही,
न स्थान देओ मन बीच लोभ को।५०।

भार्गव वन्श में एक अजीगर्त नाम का ब्राह्मण हुआ। यह महाराज हरिश्चन्द्र के समय में था। हरिश्चन्द्र के सन्तान न होने के कारण नारद के उपदेश से वरुण को प्रार्थना की कि यदि मेरे पुत्र हो जावे तो मैं उस पुत्र से आपका यज्ञ करूं। उसकी इच्छानुसार हरिश्चन्द्र के पुत्र हुआ, उसका नाम रोहित रखा। जब वरुण ने आकर पुत्र मांगा, तब राजा हरिश्चन्द्र ने

पुत्र स्नेह के कारण "अभी वर्ष भर का है, इसके दांत आने दो, इसका संस्कार होने दो" इत्यादि बहाने कर ६, ७ वर्ष व्यतीत किये। यह समाचार रोहित ने सुना तो वह जङ्गल में चला गया। अब वरुण ने राजा को पुत्र न देता देख उसके पेट में जलोदर व्याधि करदी। तब तो राजा दुखित हो मन्त्रियों से बोला कि पुत्र तो भग गया है अब क्या करें, कोई ब्राह्मण का पुत्र मोल लो जो चाहे सो उसे देदो पर वरुण का यज्ञ कर देवें तो ठीक हो। मन्त्री ने उस समय इस अजीगर्त से जो धन का लोभी था आकर कहा कि तुम अपना एक पुत्र देदो, इसके बदले में सौ धेनुएं लेलो। अजीगर्त ने लोभ में आकर कुछ न सोचा और कठिन हृदय कर अपने तीन पुत्रों में से बिचले पुत्र शुनःशेप को बेच डाला। पुत्र बेचारा पिता की आज्ञा पाकर हरिश्चन्द्र के यज्ञ में मन्त्री के साथ चला आया। उधर रोहित पिता की व्यथा सुन कर आने को तैयार हुआ, पर उसे इन्द्र ने समझा कर रोक दिया।

[यह कथा देवी भागवत में है।]

और विष्णु भागवत में यह भेद दिखाया है कि रोहित कुमार ने ही अजीगर्त से शुनःशेप को खरीदा और राजा को देकर प्रणाम किया। फिर हरिश्चन्द्र ने उस से पुरुषमेध यज्ञ किया। देवी भागवत में है कि उस शुनःशेप को फिर विश्वामित्र ने वरुण से प्रार्थना करवा कर छुड़वा दिया और राजा का यज्ञ भी मनवा दिया। भागवत की इस कथा पर पण्डित विचार करते हैं कि रोहित ही उसे लेकर आया तो वरुण ने उसे क्यों छोड़ दिया और रोहित की सत्ता में शुनःशेप के

लाने की आवश्यकता ही क्या ? इत्यादि—अस्तु, इसका चे कुछ भी विचार करें, हमें तो सारग्राही होना चाहिये।

ऊपर के पद्य का सारांश यह लो कि ऐसे लोभ को कभी हृदय में स्थान न दो। लोभ के वश में आ कर मनुष्य कुकर्म कर बैठता है। आगा पीछा नहीं सोचता है।

कड़ी प्रतिज्ञा कर मूढ रुक्म भी,
जा मार्ग ही में रण ठान कृष्ण से।
हुआ पराभूत न गेह जा सका,
बिना विचारे प्रण को नहीं करो ५१

जब भगवान् श्री कृष्णचंद्र शिशुपालादि को पराभव कर रुक्मणि को हर लाने लगे, तब राजा भीष्म का बड़ा पुत्र रुक्म कृष्ण द्वारा अपनी बहन का हरण सुन बहुत कुपित हुआ और झट उठ धनुष हाथ में ले बोला यदि मैं आज मेरी बहन को हरने वाले कृष्ण को जीतकर न आऊं तो इस नगर में पैर न रखूं। यों कह वह रथ में बैठ उनसे लड़ने गया। मार्ग में जा पीछे से कृष्ण को (जो रथ में बैठे जा रहे थे) आवाज दे रण के लिये पुकारने लगा। भगवान् भी इस को आया देख रथ ठहरा कर खड़े रहे। पास पहुंचते ही इस रुक्मने बाण छोड़ना आरम्भ कर दिया। कुछ देर लड़ाई होने

के बाद भगवान् ने इसी खड्ग से मारना चाहा, किन्तु रुक्मिणी की प्रार्थना से कुरूप कर तथा डाढी मूछ काट कर छोड दिया। भगवान् रुक्मिणी को ले अपने नगर में आ गये। जब वह सँभला तब नगर की ओर चला, किन्तु नगर में न जाकर और बहुत लज्जित होकर उसने मरने व वन में रहने की इच्छा प्रगट की। तब लोगों के समझाने से यह दूसरा गांव बसा कर रहने लगा और प्रतिज्ञानुसार पिता के नगर में न गया।

[यह कथा भागवत के दशमें स्कन्ध के उत्तर खण्ड में ५४ वें अध्याय में है]

इस कारण प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि विना विचारे प्रतिज्ञा न करे। उसको हानि,लाभ,बल,अबल, देश,काल,सामर्थ्य आदि सोच कर प्रतिज्ञा करनी चाहिये । विना विचारे की हुई प्रतिज्ञा का निभना कठिन हो जाता है और प्रतिज्ञा न निभने से मनुष्य मृतक तुल्य गिना जाता है।

श्री कृष्ण खा बाण बलिष्ठ भीष्म के,
किया हुआ भी प्रण भूल युद्ध में।
उठा चुके थे निज चक्र कोप से,
न रोष में आकर आन को तजो ॥५२॥

जब भीष्म पितामह कौरवों के सेनापति थे, तब इन्होंने

अद्भुत पराक्रम से अर्जुनादि को जो इनके सम्मुख युद्ध में आये थे, विस्मित कर दिया और बाण युद्ध से इस प्रकार घमसान मचाया कि अर्जुन के छक्के छूट गये और वह अधीर हो गया। विशेष क्या, उसको भीष्म की मार के आगे वार भी न बंधा। यह देख भगवान् ने अर्जुन से कहा कि अर्जुन तुमने कहा था कि संग्राम में कौरवों को मय उनके साथियों के अकेला मारूंगा। आज यह शिथिलता कैसे करते हो? पराक्रम दिखलाने का समय यह है, पौरुष करो। यह सुन अर्जुन को कुछ उत्तेजना हुई और वह भगवान् से बोला महाराज! रथ को भीष्म के पास लीजिये मैं अभी उनको गिराता हूं। भगवान् रथ भीष्म के पास ले गये। भीष्म ने अर्जुन को सम्मुख आया देख प्रचण्ड पराक्रम करना आरम्भ किया और इतने बाण बरसाये कि अर्जुन हक्का बक्का हो गया, फिर सेना को, रथ को, घोड़ों को तीखे बाणों से बींध डाला। इस प्रकार अर्जुन को विषमता में फँसा देख भगवान् ने विचारा कि अब यदि मैं भीष्म को न रोकूंगा तो सम्भव है कि थोड़ी देर में ये पाण्डवों की सेना का प्रलय ही करदें, इस कारण अर्जुन को सहायता के लिये मुझे चलना चाहिये। यह विचार भगवान् ने सुदर्शन चक्र को याद किया; वह याद करते ही उनके हाथ पर आ चमका। बस, वेग से ही भगवान् क्रोध में आकर रथ से उतर पाण्डव सेना का संहार करने वाले भीष्म के सम्मुख चक्र लिये दौड़े। भीष्म ने इन्हें आते देख प्रणाम किया। अर्जुन ने पीछे से जा दोनों भुजाओं से बाथ भर इनको रोका, पर वह न रुके और बहुत वेग से दस पैंड में जाकर जैसे तैसे अर्जुन ने इन्हें रोक कर कहा कि प्रभो! आप न लड़ें, मैं ही लड़ूंगा। आपने

प्रतिज्ञा की है कि मैं संग्राम में शस्त्र ग्रहण नहीं करूंगा। यह सुन भगवान् वापस आये।

[यह कथा महाभारत के भीष्म पर्व के ५६ वें अध्याय में है]

इस लिये क्रोध नहीं करना चाहिये। क्रोध आवे तब पहले अपनी प्रतिज्ञा और मान मर्यादा की तरफ ध्यान देना चाहिये।

आते हुए भूप दिलीप स्वर्ग से,
न वन्दना दे पथ बीच धेनु को।
दुखी हुए सन्तति रोध—शाप पा,
न पूज्य पूजा क्रम को तजो कभी ॥५३॥

महाराज दिलीप एक दफा इन्द्र से मिल जब अयोध्या को आ रहे थे तब उन्हें मार्ग में कामधेनु मिली। राजा को उस समय अपनी रानी सुदक्षिणा का यह विचार हो रहा था कि आज उसे ऋतु का ४-५ वां दिन है, मुझे अवश्य चलना चाहिये नहीं तो धर्म लोप का दोषी ठहरूंगा। धर्म शास्त्रों की आज्ञा है कि ऋतुस्नाता भार्या को जो स्वस्थ हो न मिलता है, उसे घोर पाप लगता है। इस प्रकार विचार करते हुये उस महाराजा ने कामधेनु की ओर ध्यान न दिया और रथ में बैठा ही चला

गया। उसने दूर से भी प्रणाम न किया। कामधेनु ने राजा का यह प्रभाव समझ शाप दिया कि तू जिस संतान की चिन्ता में मुझे अपमानित करता है और पूज्य की पूजा का उल्लंघन कर जा रहा है, इससे मेरी सन्तति (नन्दिनी) का आराधन किये बिना तेरे सन्तान न होगी। इस शाप को राजा ने उस समय आकाश गङ्गा के प्रवाह के नाद समीप होने से न सुना और घर चला गया। बहुत अवस्था बीत जाने पर भी राजा के सन्तान न हुई।

अन्त में वशिष्ठ जी की आज्ञानुसार नन्दिनी की ही आराधना से उनके पुत्र उत्पन्न हुआ।

[यह कथा रघुवन्श के प्रथम सर्ग में है।]

इसका सार यह समझना चाहिये कि प्रत्येक पुरुष अपने गुरु आदि जो पूज्य हैं, उनकी पूजा का व्यतिक्रम (रद्दोबदल) न करें। यह धर्म विचार कहलाता है और यह अवश्यमेव कल्याण को रोक देता है।

दे मन्त्र विद्या शुनशेफ विप्र का,
राजा हरिश्चन्द्र सुयज्ञ घात से।
दया भरे कौशिक ने बचा लिया,
रक्षा करो संकट बीच दीन की ५४

जब महाराजा हरिश्चन्द्र ने वरुणयज्ञ में अजीगर्त से शुनशेफ नामी पुत्र मोल ले लिया और इसको खम्भे से बांध दिया, तब वह खूब रोने और चिल्लाने लगा। इस बात को देख उस यज्ञ में आये हुए विश्वामित्र ने राजा से कहा कि महाराज! आप इस बालक को छोड़ दीजिये यह विलाप करता है, इस पर दया करनी चाहिये, मुझसे यह नहीं देखा जाता इस लिये मैं आप से यह याचना करता हूं। राजा ने उत्तर दिया कि मुनिराज! मैं उदर व्याधि से बहुत दुःखी हूं मुझे यह यज्ञ करने दीजिये। आप इसका आग्रह छोड़ और कुछ मांगिये मैं दूंगा, पर इसे तो नहीं देना चाहता। इस प्रकार राजा द्वारा सुन कर तो वह शुनः शेप बहुत दीन शब्दों में रोने लगा। अन्त में विश्वामित्र को करुणा ने आ दबाया। तब उन्होंने उस बालक के कान में एक वरुण का मन्त्र दिया और कहा कि तू इसे जप, अभी तेरा दुःख दूर हो जायगा। वह उस मन्त्र को जपता ही था कि थोड़ी देर में वरुण देव प्रत्यक्ष आखड़े हुये और लड़के से कहा कि मैं प्रसन्न हूं। तब राजा हरिश्चन्द्र ने वरुण की स्तुति कर कहा कि महाराज मैंने इतने दिन पुत्र की अनपत्यता, पितृ ऋण से न छूटने के तथा अपुत्र की अगतिके (जैसे शास्त्रों के वचन हैं) भय से छुपाया था, आप क्षमा करें और इस कीट पुत्र की भेट ले प्रसन्न होवें। वरुण बोला—राजन् इसने मेरा मन्त्र जप मुझे सन्तुष्ट किया है इस कारण इसे छोड़दे। मैं तेरे यज्ञ को सफलता मानता हूं, तेरी व्याधि अभी निवृत्त हो जायगी। इतना कह वरुण अन्तर्हित हो गये। शुन. शेफ को भी विश्वामित्र की सहायता से रक्षा हुई।

(यह कथा देवी भागवत के ७ वे स्कन्ध १७ वे अध्याय में है।)

इसी कारण प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि संकट में असहाय की सहायता करे।

रहस्य वार्ता गिरिजा महेश की,
सुगुप्त भी ही सुन पुष्पदन्त ने।
स्व कामिनी को कह दुःख ही सहा,
स्त्री से न खोलो पर गूढ़ भेद को ५५

एक बार पार्वती जी महादेव जी से कुछ रहस्य की बातें पूछने लगी और शिव को साथ ले कहा कि प्रबन्ध करदो कि यहां कोई न आसके। तब महादेव जी ने नन्दी को द्वार पर बिठा दिया और यह कहा कि किसी को न आने दो। थोड़ी ही देर पीछे पुष्प दन्त नाम गण वहां गया, नन्दी ने उसे रोका, तब उसने विचारा कि मैं तो शिव का प्रसाद प्राप्त गण हूं मेरा प्रवेश भी क्यों रोका जाता है। यह विचार उसने योग विद्या से सूक्ष्म शरीर बना कर भीतर प्रवेश किया और एकान्त में खड़े रहकर शिव पार्वती के रहस्य की बातें (जो विद्याधरों के विषय में हो रही थीं) सुन लिया, और बाहर आकर स्थूल शरीर धारण कर घर लौट गया। रात्रि को उसने वे रहस्य की बातें अपनी स्त्री से कहदीं। प्रभात होते ही उसकी स्त्री ने, जिसका नाम जपा और जो शिवजी के यहां प्रतीहारी थी वह सब हाल पार्वती जी से कह दिया। यह सुन गिरिजा ने बड़ा

अचम्भा किया। शिव जी से कहके पार्वती ने पुष्प दन्त को बुलवाया और शाप दिया कि तू मनुष्य होजा।

शाप सुनते ही वह मनुष्य हो गया और अनेक दुःख भोगने लगा।

[यह कथा सरित्सागर के कथा पीठलम्बक में है।]

सार यह निकला कि अपनी पत्नी से भी गूढ़ भेद को नहीं कहना चाहिये, क्यों कि स्त्रियों के विशेष वाक् संयम नहीं रहता। ऐसी विरली स्त्रियां मिलेंगी; जो वाक् संयम रखती हों। जिसके वाक् संयम नहीं हो; वह स्त्री उस रहस्य को हृदय में नहीं रख सकती।

महा तपस्या कर देव शम्भु की,
ब्रह्मा उन्हीं को निज पुत्र चाहके।
त्रिलोक में पूजन हीन हो गया,
अप्राप्य वाञ्छा न कभी करो सखे ५६

एक समय ब्रह्मा और नारायण दोनों ही शङ्कर के दर्शन को पृथ्वी पर घूमते हुए हिमालय के पास आये; तो उन्हें भू से नभ तक व्याप्त एक ज्वालामय लिंग देख पड़ा। उसे देख

आश्चर्य से दोनों ही उसका आदि अन्त लेने को तैयार हुए। एक तो (ब्रह्मा) ऊपर गया और नारायण नीचे पाताल में गये; पर उस तेजोमय लिंग का अन्त और आदि न पासके।

तब थक कर दोनों ही देव उस स्थान पर जहां से चले थे आये और शिवकी तपस्या करने लगे। बहुत वर्ष कठिन तप करने पर महादेव प्रसन्न हुये और सम्मुख प्रगट हुए और कहा कि वर मांगो। नारायण ने चाहा कि मैं आपका सेवा परायण रहूं; मुझ में आपकी भक्ति हो। शिवजी ने प्रसन्न हो 'एवमस्तु' कहा। ब्रह्मा ने यह वर मांगा कि हे शंकर मेरे तुमही पुत्र बनो। यह सुन शिवजी ने ब्रह्मा से कहा कि जावो; तुम लोक में अपूज्य होगे। तब से ब्रह्मा जी का पूजन २-३ नियत स्थानों के अतिरिक्त कहीं नहीं होता।

[यह कथा कथा सारित्सागर के प्रथम तरंग में है।]

अतः असम्भव और अप्राप्य वस्तु की वांच्छा कभी न करना चाहिये, वैसा करने से लाभ तो दूर रहा; किन्तु हानि हो जाती है।

निन्दा भरे वाक्य अनेक शंभु को,
स्व पुत्रिका संमुख बोल दक्ष ने।
खोई सुता, यज्ञ विनाश भी सहा,
गाली कभी दो न किसी समर्थ को ५७

दक्ष प्रजापति थे। उनने एक बार यज्ञ किया; उसमें सब देव और मुनि बुलाये गये; किन्तु शिव जी को नहीं बुलाया। कारण इसका यह था कि ब्रह्मा की सभा में जब दक्ष आये थे, तब उन्हें देख सब देव उठे पर शिवजी न उठे। तब दक्ष ने शिव जी को बहुत कुछ भले बुरे शब्दों में कहा कि तुम मेरा अपमान करते हो, मैं तुम्हारा श्वशुर होता हूं।

इस डाह के कारण दक्ष ने शिवजी को नहीं बुलवाया। जब सती ने सुना कि मेरे पिता के घर यज्ञ है, तब उससे रहा न गया और उसने शिवजी से जाने की आज्ञा मांगी। शिवजी ने सती को बिना बुलाये जाने से हानियां समझा कर रोकना चाहा पर वह न रुकी और अन्त में आज्ञा पा चली गई। वहां जाकर देखा तो शिवजी का आसन नहीं है। उसने अपने पिता दक्ष से पूछा। दक्ष ने सती के सामने ही शंकर की निन्दा की। तब तो सती को बहुत क्रोध आया और बोली—अरे पिता! तू शिवजी से विरोधी हो गया, और तुझसे यह मेरा शरीर बना है इस कारण मैं इस शरीर को ही न रखूंगी—इस प्रकार कह यज्ञ की वलि में कूद पडी। सती के यज्ञ वेदी में पड़ते ही सब लोग हा हा कार करने लगे। शिवजी ने यह खबर पाते ही अपने गण वीरभद्र को पैदा कर दक्ष का यज्ञ निध्वन्श करने को भेजा। वह गण भयङ्कर शरीर धारण कर और अनेक गणों को साथ ले दक्ष के यज्ञ में आया और विध्वन्श कर डाला।

[यह कथा भागवत शिवपुराण आदि में प्रसिद्ध है]

इस कारण प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि किसी भी समर्थ पुरुष को गाली न दे अर्थात् अपने से अधिक सामर्थ्य वाले को चाहे जैसे (अनुचित) न कहे; क्यों कि वह तुम्हारी हानि आसानी से कर सकता है।

समुद्र के मन्थन से सुरौघ ने;
अवश्य पाए सुख दुःख तो कई ।
परन्तु पीयूष निकाल ही लिया,
तजो नहीं उद्यम सिद्धि के बिना ५८

देवताओं ने दानवों से मिल कर जब समुद्र मन्थन किया, तब देवों को बहुत कष्ट उठाने पड़े। सबका मिल कर दानवों की खुशामद करना; उन्हें इस काम के लिये राजी करने को सन्धि करना. मन्दराचल को लाना, उसका समुद्र में उतारना; तथा शेष को नेता बना कर उसके मुख पुच्छादि पकड़ना; तथा दानवों को किसी तरह मुख की ओर करना, हलाहल से बचना, रत्नों को जो २ लेता गयो उस २ पर संतोष रखना, इत्यादि-अनेक कष्ट तो उठाये; पर दृढता के साथ लगे रह कर अमृत निकाल ही लिया। इस कारण उद्यम को सिद्धि के बिना न छोड़ना चाहिये।

[यह कथा भागवत के ८ वें स्कन्ध में है]

उत्तम पुरुषों का लक्षण यही है कि आरम्भ किये कार्य्य को पूर्ण सिद्धि पाये विना न छोड़ना चाहिये, किन्तु पूरा ही करना चाहिये।

वड़ी बड़ाई गरुड स्व वीर्य की,
सुरेन्द्र के सम्मुख बोल विष्णु का।
स्व कन्ध पै हाथ उठा सके नहीं,
कभी नहीं गर्व गुणादि का करो।५९।

जब गरुड़ ने सुमुख नाग भक्षण करने के लिये कह दिया था, तब उसको मातलि ने अपनी कन्या गुणकेशी के लिये वर नियत कर उसे इन्द्र से अमृत दिलाया और अभय कराया। यह समाचार पाते ही गरुड़ शीघ्र इन्द्र के पास पहुंचा और वहां जाकर इन्द्र से बोला—देवराज! आपने मेरे भक्ष्य को अभय देकर मेरी जीविका का नाश किया, यह अच्छा नहीं। विधाता ने मुझे सर्पों का भोजन दिया है, तुम अब इसे क्यों रोकते हो? तुमने इसे अभय कर दिया, तो अब मैं दूसरे नागों को नहीं पा सकूंगा, क्योंकि यह उन्हें सहायता करेगा। तुम मुझे भी कमज़ोर न समझना, मैं भी काश्यप का पुत्र हूं। और मुझे भी संसार के धारण करने की सामर्थ्य है। देखो मैं साक्षात् विष्णु को कन्धे पर धारण करता हूं और लीला मात्र से ही ले जाता हूं, तीनों लोकों का सार उनमें है,

और उन्हें मैं ढोता हूं। ऐसा कौन है जो इतने भार वाले भगवान्‌ को धारण करले ! मैं तुम्हें भी एक पंख पर चढ़ा कर ले जा सकता हूं, इससे तुम्हीं मेरे बल का अन्दाजा करलो। गरुड़ की इन घमण्ड भरी बातों को विष्णु भी स्वयं सुनते थे, वे उठ कर बोले हे गरुड़ ! तुम पक्षी हो, तुम इतनी प्रशंसा न करो, मेरे भार को तीनों लोक भी नहीं सह सकते। मैं स्वयं ही अपने आपको और तुम्हें धारण किये रहता हूं। यदि तुम नहीं मानते तो लो मेरे एक हाथ को कन्धे पर रखो और उठावो तो अपनी प्रशंसा का हाल मालूम हो जाय। यों कह विष्णु ने अपना हाथ गरुड़ पर रखा तो वह नीचे दबने लगा, और बहुत ताकत करने पर भी न उठ सका। वह उसके भार से दब कर भूमि पर गिर पड़ा, पंख फैल गये, आंखें निकल गईं और दम भर गया। गरुड़ को इस दशा में देख विष्णु ने भुजा से भार उठाया। तब वह कुछ देर पीछे होश में आकर पांवों पड़ गया और क्षमा चाही।

[यह कथा महाभारत के उद्योग पर्व के १०५ वें अध्याय में है।]

इसलिये हर मनुष्य को चाहिये कि वह अपने गुण, बल, बुद्धि, विद्यादि का गर्व न करे, क्यों कि भगवान्‌ का नाम गर्व मर्दन है और वे घमण्डी का शिर नीचा कर देते हैं।

विदर्भ से आगत देख विप्र को,
श्री कृष्ण ने आसन अर्घ पाद्य दे।
स प्रेम पूजा कर के विदा किया,
आतिथ्य आगन्तुक को सभक्ति दो ६०

जब विदर्भ देश के राजा भीष्मक ने अपनी कन्या रुक्मणी का विवाह श्री कृष्ण से करना चाहा तब उसके बड़े पुत्र रुक्म ने इस काम में विघ्न डाला। और रुक्मणी को कृष्ण के साथ ब्याहने से रोक दिया, और शिशुपाल के यहां टीका भेज दिया। रुक्मिणी ने यह देख एक ब्राह्मण को पत्रिका लिख गुप्त रीति से उसे द्वारका भेज दिया। वह ब्राह्मण पत्रिका ले द्वारका पहुंच कर भगवान् के पास गया, तब भगवान् द्वार से ही उसे देख कर सम्मुख लेने गये। चरणों में प्रणाम कर उस ब्राह्मण को सिंहासन पर बिठा विधि पूर्वक अर्घ्यपाद्यादि से पूजनादि किया। जैसे देवता भगवान् का पूजन करते हैं, वैसे ही उनने ब्राह्मण की सेवा की। उसे भोजन करा विश्राम करा दिया। जब वह लेट गया तब आप उसके पांव दबाने लगे और उसके आने का हाल पूछने लगे। उस ब्राह्मण ने वह पत्रिका देदी और मुख से भी रुक्मिणी का सब प्रेम मय वृतांत सुना दिया। भगवान् ने वह पत्रिका पढ़ी और उसमें अत्यन्त प्रेम के समाचार बांच उसे छाती से लगाया। फिर उस ब्राह्मण का बहुत सत्कार कर विदा किया और आप भी साथ ही रथ में बैठ रुक्मिणी हरण के लिये चले।

[यह कथा भागवत दशम स्कन्ध के ५२ वें अध्याय में है।]

इसका सारांश यह समझो कि अपने घर पर आये हुए अतिथि को सत्कार किये बिना न जाने दो। आगन्तुक का सत्कार करने से बहुत पुण्य होता है, तथा यश और आयु की वृद्धि होती है और पाप नष्ट होते हैं।

न मान आज्ञा पहिले विरंचि की,
देवर्षि भी दिव्य सहस्र वर्ष का।
पा शाप गन्धर्व हुए अवश्य ही,
नहीं पिता की अवहेलना करो ॥६१॥

एक बार ब्रह्मा जी अपने पुत्र नारद जी से कहने कि बेटा नारद ! तुम सृष्टि बढ़ाओ (विवाह कर सांसर्गिक सृष्टि करो) यह सुन नारद जी ने पिता श्री ब्रह्मा को निषेध करते हुए बहुत कुछ निवेदन किया कि मेरा मन वैराग्य और भक्ति में ही लगता है, मैं इस झंझट में फँसना नहीं चाहता हूं। तथा यह काम भी सज्जनों का नहीं है, वे तो आत्मा राम होते हैं। शाश्वत सुख को छोड़ नाश-शील सुख में आशक्ति नहीं करते हैं। यह सुन ब्रह्मा ने फिर नारद जी से दबा कर कहा कि तू मेरा पुत्र है, मैं जैसा कहूं वैसा करना तेरा धर्म है। तब नारद ने बिलकुल निषेध कर दिया। ब्रह्मा ने नारद जी को अपनी आज्ञा से विमुख होते हुए देख क्रोध कर यह शाप दिया कि तू इस सृष्टि कर्म को बुरा समझता है, इस लिये गन्धर्व हो और इस गन्धर्व योनि में तू महा कामी हो। इस शाप के अनुसार नारद जी उपबर्हण नाम के गन्धर्व हुए। इस योनि में नारद गायन और नृत्य—कला में अत्यन्त प्रवीण हुए। इनकी प्रीति अप्सराओं में अधिक थी।

[यह कथा नारद पंचरात्र में मिलती है]

इससे यह सीखना चाहिये कि पिता की अवज्ञा कभी न करना। पिता की अवज्ञा करने से उनको कुआशिष लगती है तथा वे उन पुत्रों को पीछे के लिये भी चित्त से उतार कर धन जीविका आदि सम्पत्ति नहीं पाने देते हैं।

एकान्त में सुन्दरता निहार कै,
सरस्वती पै विधि मुग्ध होगया।
अवार्य है काम अतः समीप में,
स्व पुत्रिका भी तरुणी रखो नहीं ।६२।

सरस्वती ब्रह्मा जी की पुत्री हुई। यह सुन्दर और लावण्य की निधि थी कि ऐसी संसार में दूसरी न हुई। जब इसे तरुण अवस्था प्राप्त हुई तब एक दिन ब्रह्मा जी इसे अकेली देख कामातुर हो भावों को बदल कर इसके पास जा खड़े हुए। सरस्वती इनकी चेष्टा देख पहचान दूर से ही भाजी और मृगी बन कर जंगल में चली गई। तब ब्रह्मा जी भी मृग बन कर वन में चले गये। इस दशा को देख महादेव ने विचारा कि ब्रह्मा को इस समय शिक्षा देना आवश्यक है। यह सोच धनुष धारण कर शिकारी का भेष बना कर (जहां ब्रह्मा जी सरस्वती के पीछे दौड़ रहे थे) उस जंगल में जा शिवजी ने एक बाण ब्रह्मा पर ऐसा छोड़ा कि वह ब्रह्मा जिधर २ दौड़ते उधर २ ही इनके पीछे, अब लगा २ ऐसा

दीख पड़ता था। इस बाण की चोट के डर से ब्रह्मा जी उस रस को भूल गये। और प्राण बचाने की चेष्टा करते हुए चारों ओर दौड़े, पर उस बाण से पीछा न छूटा। इस प्रकार ब्रह्मा जी स्वर्गादि लोकों में भागे २ फिरे। जब उस बाण से बचने का और उपाय न देख लज्जा से मुख नीचा किये शिवजी के शरण में आ क्षमा मांगी। शिवजी ने दया कर उस बाण को रोक दिया और ब्रह्मा को समझा कर (शिक्षा देकर) यथा स्थान भेज दिया।

[यह कथा पुष्पदन्त गन्धर्वराज ने शिव महिम्नः स्तोत्र के २२ वें पद्य में उद्धृत की है। और भागवत के तीन स्कन्ध में भी संक्षेप से मिलती है।]

यहां यह लिखा है कि सरस्वती के पीछे २ दौड़ते हुए ब्रह्मा जी को मरीच्यादि पुत्रों ने बहुत कुछ बुरा भला कहा। तब ब्रह्मा ने लज्जा कर उस शरीर को छोड़ दिया।

इसका सार यह है कि काम का वेग अनिवार्य है। इस कारण एकान्त में सुन्दर (रूपवती) यदि अपनी पुत्री या बहन भी हो तो, उसे भी अपने साथ न रखो। न जानें किस समय क्या होजाय। इससे सावधान रहते हुए दूर ही रहना अच्छा है।

स्वच्छन्द सोते भगवान् विष्णु ने,
खा लात भी श्रीभृगु की स्ववक्ष पे।
किया नहीं कोप विनम्र ही हुए,
समर्थ भी हो कर के रखे क्षमा ॥ ६३

एक बार सरस्वती नदी के तीर पर यज्ञ करते हुए मुनि लोग यह विचार कररहे थे कि ब्रह्मा विष्णु महेश्वरों में से कौन सत्व गुण में विशेष है। इस बात को खोज के लिये सर्व सम्मति से भृगु जी को भेजा कि तुम तीनों देवों की परीक्षा कर आओ। इसके अनुसार भृगुजी पहले ब्रह्मा के लोक में पहुंचे, वहां ब्रह्मा के पास जा प्रणामादि कुछ भी न कर यों ही खड़े रहे। इनको ठूंठ के समान खड़े देख ब्रह्मा को बहुत क्रोध हुआ, पर ब्रह्मा ने अपना पुत्र जान मन ही में क्रोध को शान्त किया। फिर भृगु जी कैलास पर्वत पर आये। इन्हें आते देख शिवजी अपने भ्राता के समान इनका सत्कार करने उठे, और बांह भर मिलना चाहते थे कि ये बोले हटोजी तुम मुझे न छुओ, तुम श्मसान की राख लगाते हो, हाथ में कपाल रखते हो, यह सब अमङ्गल भेष है, इस लिये दूर से बात करो। शिवजी इस बात को सुन क्रुद्ध हो भृगुजी को त्रिशूल ले मारने दौड़े, परन्तु पार्वती ने चरणों में पड़ इन्हें शांत किया। फिर भृगु जी वैकुंठ में गये, वहां भगवान् विष्णु लक्ष्मीजी की जांघ पर शिर धरे हुए सो रहे थे, उन्हें इनके आने का ध्यान नहीं था। भृगु जी ने चुप चाप जाकर विष्णु की छाती में एक लात मारी। लात खाते ही भगवान् जगे और पलंग से उतर कर भृगु से प्रणाम कर क्षमा मांगी और कहा कि महाराज मुझे आपके पधारने का ध्यान न रहा। इसके लिये आप मुझे क्षमा दीजिये। आपके चरण बहुत कोमल हैं, इनमें लगी होगी, यों कह कर भृगु जी का चरण दबाने लगे। और यह कहने लगे कि आज मैं धन्य हूं, जो मुझे आपने यहां पधार कर दर्शन दिया है। इत्यादि बातें सुन भृगु परम

सन्तुष्ट हुए, और वहां से आकर भृगु ने मुनिवृन्द को ये सब समाचार कह सुनाये।

[यह कथा भागवत दशम स्कन्ध की ८६ वें अध्याय में है।]

इसका भावार्थ यह समझना चाहिये कि समर्थ हो-कर जो क्षमा भाव रखै, उसका ही क्षमा करना सफल है। क्षमा में बड़े २ गुण हैं। इस लिये क्षमा गुण सबको अपनाए रखना चाहिये।

वशिष्ठ के धेनु कृत प्रभाव से,
ईर्ष्यालु हो गो हठ धार छीन ने।
पाया बुरा कौशिक ने पराभव,
न अन्य ऐश्वर्य निहार के जलो ६४

जब विश्वामित्र को वशिष्ठ ने न्योता दे कामधेनु के प्रसाद से सेना सहित राजा का राजसी व अलभ्य पदार्थों से सत्कार किया तो विश्वामित्र को अचम्भा हुआ और बोला कि वशिष्ठ मुनि ने इस तरु स्थल में जहां फल पुष्प जल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता है, हमारा स्वर्ग दुर्लभ पदार्थों से आतिथ्य किया है यह क्या बात है? तब लोगों ने इनको काम धेनु का प्रभाव है यह कह सुनाया। राजा विश्वामित्र के मन में ईर्षा हुई कि यह गौ अपने को ले लेना चाहिये। तब वह वशिष्ठ से बोले कि आपकी कामधेनु मुझे दो। वशिष्ठ

नष्ट गये। तब ये बोले कि या तो प्रसन्नता से दो, नहीं तो बल ले जाऊंगा। वशिष्ठ ने कौशिक का आग्रह देख कामधेनु से कहा कि राजा का ऐसा दुराग्रह है। धेनु बोला तुम मुझे भी खोल दो और उसे आने दो, मैं फैसा साधा कर देती हूं। धेनु खोल दी और वशिष्ठ ने राजा से कहा कि मैं अपनी खुशी से तो धेनु न दूंगा आप जो चाहे सो करो। तब तो कौशिक सेना सहित कामधेनु को छीनने लगा। कामधेनु ने अपने अंगों से यवन म्लेच्छादि गण उत्पन्न किये। उनने और वशिष्ठ ने इस राजा को सेना सहित संग्राम में ऐसा तिरस्कृत किया कि जिसकी हद नहीं। सेना सब नष्ट भ्रष्ट हो गई। कौशिक थक कर विह्वल हो गया और अपनी जाति, बल, पौरुष पर धिक्कार देने लगा।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में प्रसिद्ध है।]

इसका यह सार समझना चाहिये कि दूसरे का ऐश्वर्य देख कर डाह मत करो (ईर्ष्या न करो) ईर्ष्या करने से हृदय (मन) को सन्ताप होकर बल क्षीण होता है, और कुछ नहीं होता है।

विमूढ भी ब्राह्मण पुत्र भूमि पै,
  दृढ प्रतिज्ञा कर सत्य वाक्य की।
महर्षि सत्यव्रत नाम का हुआ,
  हे भाइयो ! सत्य सदैव बोलिए ॥६५॥

कौशल देश में देवदत्त नाम ब्राह्मण के एक उतथ्य नाम का पुत्र था। वह जड़ बुद्धि था। ब्राह्मण ने पुत्र के सब संस्कार कर पढ़ाने में बहुत प्रयत्न किया पर, उसके एक अक्षर भी समझ में नहीं आया। यह देख पिता ने क्रोध कर उतथ्य को घर से निकाल दिया। वह असहाय उतथ्य प्रौढ़ अवस्था में आ गया था। तब बहुत घबड़ाया और जंगल में इधर उधर भटकने लगा, और अपनी मूर्खता पर पछतावा करने लगा। अन्त में उसने सोचा कि—अब पढ़ना लिखना तो कठिन है, जिससे अपना जन्म सुधर सके। इससे आज ही से मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि कभी झूंठ नहीं बोलूंगा, क्यों कि बड़े लोगों से सुना जाता है कि सत्य के बराबर कोई तपः नहीं है। यह व्रत धारण कर एक कुटी बना बैठा। कुछ दिनों पोछे उसका नाम सत्य के प्रभाव से सत्यव्रत हो गया। लोग उसे मानने लगे। एक दिन एक भील शिकार को उसी जंगल में आया। उसने एक सूअर के बाण मारा था, वह सूअर उस बाण से विंधा हुआ भय से भाग उस सत्यव्रत के आश्रम में घुस कर कहीं छिपने जा रहा था कि बैठे हुए सत्यव्रत ने उसको बाण से घाव वाले और रुधिर बरसते हुए देख एक दम ऐ ऐ ऐ ऐ बोल अचम्भा और घृणा की। उस आकस्मिक दशा में सरस्वती के बीज मन्त्र का उच्चारण हो जाने से जगदम्बा भुवनेश्वरी प्रसन्न हुई और उसके प्रसाद से उसे एक दम सब विद्यायें फुरने लगीं। उसके हृदय में एक दम प्रकाश हो उठा। इतने में वह भील उस सूअर को ढूंढ़ने आया और सत्यव्रत से बोला—महाराज! मेरा बाण खाया हुआ एक सूअर इधर आया था, वह किधर गया, आप बताइये, मैं सुन चुका हूं कि आप 'सत्यवक्ता हैं। सत्यव्रत ने सोचा कि अब

क्या करूं। सूअर को बताता हूं तो हिंसा आती है और न बतलाता हूं तो झूंठ बुलती है, इस धर्म संकट से कैसे छूटूं। यह सोचते ही उसके वाग् बीज के प्रभाव से बुद्धि उत्पन्न हो गई और वह बोला कि भाई जो देखती है वह बोलती नहीं है और जो बोलती है वह देखती नहीं है, फिर तू मुझे क्या पूछता है। यह उत्तर पा भील चुप हो गया, और प्रणाम कर चला गया। फिर वह सत्यव्रत बाल्मीकि के समान कवि हुआ, जिसका आख्यान अब भी पर्व के रोज ब्राह्मण कहते सुनते हैं।

[यह कथा देवी भागवत के तीसरे स्कन्ध में है और लघु स्तव में भी २ पद्य से उद्धृत की है।

इसका भावार्थ तो स्पष्ट ही है कि हमको सदा सत्य बोलना चाहिये। सत्य भाषण भी एक प्रबल तप है, इससे संयम सिद्ध होता है, वाणी सिद्ध होती है, पाप छूट जाते हैं, तेज बढ़ता है, लोक में प्रतिष्ठा होती है, आत्मबल बढ़ता है और अन्त में सद्गति लाभ होती है।

सहाय दाता समयानुकूल हो,
सौमित्र ने क्लेश अनेक भाँति के।
श्रीराम के साथ अरण्य में रहे,
विपत्ति में साथ तजो न बन्धु का।६६।

रामायण में यह बात प्रसिद्ध ही है कि श्री रामचन्द्र जब वनवास को गये तब राघव के रोकने पर भी लक्ष्मण उनके साथ गये और जंगलों में उनके साथ अनेक कष्ट पाये, परन्तु जरा भी संकोच नहीं किया और प्राणों को न गिन कर भी सहायता की। राघव के साथ राक्षसों से लड़ना, सीता तथा राम के सोने पर जगते हुए पहरे की तरह संभाल करते रहना, शीत, वात, तापादि सहना, इत्यादि। रावण के संग्राम में तो इनने प्राणों पर बाजी पहुंचा कर भी इन्द्र जीत का वध किया। विशेष क्या कहें, श्री राम के दुःख में दुःख और उनके सुख में सुख समझना और उनके अनुसार ही वर्ताव करना लक्ष्मण ने अपना कर्तव्य समझ रखा था।

इसी प्रकार तुमको भी अपने बन्धुओं का साथ देना चाहिये। आपत्ति काल में तो कभी भी उसे न छोड़ो, बल्कि धन, मन और तन से सहाय करो। विपत्ति में ही बन्धु और मित्र की परीक्षा होती है, इसलिये इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने की ही चेष्टा करनी चाहिये।

माता पिता और गुरु प्रवर्य के,
दिये हुए राघव योग्य राज्य को।
धर्मज्ञ रामानुज ने नहीं लिया,
कभी न छोड़ो कुल की परम्परा॥६७॥

जब श्री राम को वनवास हो चुका था, तब भरत जी को कैकय देश से बुलाया गया। वहां से आते ही इनको इनकी माता कैकेई ने कहा कि ले बेटा मैंने राम को वनवास दिला दिया है, अब तू बे खटके राज्य कर। भरत जी ने उसे बहुत बुरा कहा। और यहां तक उसकी निन्दा की कि मैं तेरा मुख भी नहीं देखना चाहता—तू रघुवंश के जलाने वाली अग्नि है। तू ने सर्व नाश कर दिया जो राम जैसे पुत्र को वन में भेज दिया, मुझे तो उनके बिना राज्य तृण—तुल्य है। यों कह और जिस मन्थरा को यह लोला थी, उसको लातों से मार कैकेई के भवन से निकल गये। पाछे उनको कौशल्या वशिष्ट तथा मन्त्रियों ने भी राज्य करने को आग्रह किया और कहा कि पिता दशरथ जी तुम्हें राज्य सौंप गये हैं, फिर तुम स्वीकार क्यों नहीं करते? तब उन सब को भी भरत जी ने बहुत प्रकार नम्र शब्दों में निषेध किया और अपने को महा पापी समझा कि जिसके कारण राम सीता और लक्ष्मण वन में कष्ट पारहे हैं, मुझसा कौन बुरा होगा! यों कह वह रोने लगे, और कहने लगे कि मुझे राम के दर्शन करना है न कि राज्य, क्यों कि राज्य का अधिकारी बड़ा पुत्र ही होता है मैं रामचन्द्र जी के सामने किसी प्रकार भी राज्य स्वीकार नहीं करता, यों कह वे राम के दर्शनों को चल दिये। वन में वे राम से मिले। उनने भी इनको बहुत ऊंचा नीचा समझाया पर इन्हों ने न माना और प्रार्थना को मुझे राज्य के लिये न कहो। इस प्रकार सुन कर राम ने भरत को अपनी पादुका दी, और वे उसको नन्दी ग्राम में सेने लगे। देखिये भरत जी ने किस सीमा तक मर्यादा का पालन किया है। इसी प्रकार

तुमको भी कुल परम्परागत धर्म मर्यादा का पालन करते रहना चाहिये।

पाई मही थी जिसके प्रताप से,
महोपकारी उस जामदग्न्य को।
निकाल के विप्र महा दुखी हुए,
कभी किसी से न करो कृतघ्नता ॥६८॥

यह बात प्रसिद्ध है कि परशुराम जी के और सहस्रार्जुन का युद्ध हुआ। उसमें परशुराम जी ने सहस्रबाहु के भुजाच्छेद किया। उस समय राजपूतों ने उनके पिता जमदग्निको पीछे से मार डाला। इधर परशुराम जी सहस्रबाहु को जीत जब घर गये तब पिता की वह दशा देख क्रोध में भर पृथ्वी पर से क्षत्रिय जाति का लोप करने का संकल्प लिया। उसके अनुसार ही वे क्षत्रिय संहार करते रहे और पृथ्वी ब्राह्मणों को देत रहे। यों इन्होंने २१ बार क्षत्रियों का संहार कर ब्राह्मणों को राज्य दिया। एक दफा विप्रों ने विचारा कि बार २ यह भूमि दान तो करते हैं, पर कभी वापिस न ले लें, क्यों कि शस्त्र धारियों का विश्वास नहीं। आज हम पर प्रसन्न, कल किसी दूसरे पर। इस कारण अब इनको यहां से हटाने की युक्ति करनी चाहिये, यह सोच एक दिन सब ब्राह्मण मिल उनके पास गये। और बोले कि महाराज! आप दान दो

हुई भूमि पर क्यों वास कर रहे हो ? यह तो हमें दे चुके, अब आपका यहां रहना उचित नहीं। इस कारण आप भूमि छोड़ और कहीं जा बसें । परशुराम जी को यह बात सुन बहुत क्रोध आया और वे सब पर्वत से टकराते हुए समुद्र के पास जा, उससे भूमि मांगी। समुद्र ने जब आना कानी की, तब तो इन्होंने परशु से उसकी मर्यादा तोड़ना आरम्भ किया। यह देख वह घबड़ाया और योजन भर पीछे हट गया। परशुराम जी ने अपनी स्थिति वहां जमा कर विप्रों को शाप दिया कि अरे किये उपकार को बिगाड़ने वाले धूर्तों! तुम राज्य के योग्य न रह कर अब भिक्षा के योग्य होगे। उस शाप के अनुसार वे ब्राह्मण पीछे बहुत कष्ट पाने और पछताने लगे। आज भी ब्राह्मणों का वही हाल है। सच है कृतघ्नता का यह ही फल है।

इस कारण किसी से कृतघ्नता नहीं करनी चाहिये। कृतघ्नता बहुत बड़ा पाप है। इसका धर्म शास्त्रों में कहीं प्रायश्चित नहीं है, अतएव इससे दूर ही रहना चाहिये। उपकारी के उपकार को अवश्य मानो और कृतज्ञता प्रकाश करो।

संग्राम में राघव भी अगस्त्य से,
श्री भानु की लेकर के उपासना।
जयी हुए रावण से तुरन्त ही,
अवश्य रखो बल इष्टदेव का ॥ ६९ ॥

रामचन्द्र जी जब रावण के साथ युद्ध कर रहे थे ; तब कई बार उसे (रावण को) पराजय करने पर भी वह मरा नहीं । कभी रावण इन्हें मूर्छित कर देता था और कभी ये उसे हरा देते थे । यों बहुत समय तक रावण राम से लड़ता ही रहा । एक दफा जब रावण को मूर्च्छा आगई और सारथी उसे लंका में ले गया, तब राम एकान्त चित्त होकर सोचने लगे कि क्या बात है, दुष्ट के प्राण क्यों नहीं निकलते । कई दफा मृतक तुल्य होकर फिर सावधान हो जाता है । शिर काटता हूं दूसरे शिर पैदा हो जाते हैं । भुजा काटता हूं, तब भुजा नई बन जाती हैं । अब कोई उपाय सोचना चाहिये; जिससे यह शीघ्र ही विनिष्ट हो और अपनी जय हो । इसी बीच में अगस्त्य मुनि उनके पास आये और बोले—रामचन्द्र ! यदि तुम सूर्य देव की उपासना करो तो रावण शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जावे । यह सूर्य भगवान् तुम्हारे कुल के इष्ट देव हैं । मैं तुमको एक स्तोत्र देता हूं. तुम इसे धारण करो और सूर्य भगवान् की प्रार्थना करो । इससे तुम्हारी शीघ्र ही विजय हो जावेगी । यह सुन राम ने मुनि अगस्त्य से विधि पूर्वक सूर्य का स्तोत्र गृहण किया और वहीं उसका जप कर सूर्य की उपासना की । सूर्य भी प्रसन्न हो गये और राम से बोले, अब तुम रावण को मारोगे इसमें सन्देह नहीं । यह सुन राम बहुत प्रसन्न हुए । इतने में ही रावण सचेत हो फिर राम से लड़ने गया । बहुत देर तक राम रावण का घोर घमसान युद्ध होने पर राम ने रावण को मार गिराया, और विजय पाई ।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के सुन्दर कांड में है । और सूर्य स्तोत्र भी जो (आदित्य हृदय के नाम से प्रसिद्ध है) इसी युद्धकाण्ड के १०५ वें अध्याय में है]

इससे यह प्रत्यक्ष हुआ कि इष्ट का बल हर मनुष्य को रखना आवश्यक है। लोक में कहावत भी है कि " इष्ट बिना सब भ्रष्ट" इसी लिये मनुष्य को किसी न किसी का आश्रय लिये रहना चाहिये।

श्री राम ने असुर रावण मारने को,
लंकापुरी पहुंच के स्व सखा बनाया।
दे राज्य का पद, विभीषण को तुरन्त,
मैत्री जयेच्छु, रिपु क रिपु से बनावे ७०

हनुमान से सीता का पता लगाने पर रामचन्द्र जी वानर सेना लेकर समुद्र के तीर पहुंचे। कुछ ही समय बाद विभीषण रावण को समझाने के कारण उससे तिरस्कृत हो राम की शरण आया। उसको दूर से ही आता देख सुग्रीवादि ने उसे पकड़ मारने या बांध ने का इरादा किया, पर हनुमान के समझाने और रामजी को कुछ परिचय देने पर उसे किसी ने नहीं रोका। समीप आकर 'त्वामहं शरणं गतः' (मैं आपकी शरण आया हूं) यह कहता हुआ राघव के आगे आ पड़ा। राम ने उसे उठा लिया। हाथ पकड़ कर छाती से लगाया और सब हाल पूछा। विभीषण ने लङ्का का सब भेद राम को प्रगट कर दिया और रावण का बल, वैभव, वरदान तथा इन्द्रजीत की अवध्यता का वरदान, बल, पराक्रम कुम्भकर्णादि का पौरुष

प्रगट कर दिया और साथ ही यह भी कहा कि आप किसी बात की चिन्ता न कीजिये मैं रावण का नाश करवाने में जीवन पर्य्यन्त आपकी सहायता करूंगा और आपकी सेना के साथ रावण से लड़ूंगा। राम इस प्रकार लंका का कुल हाल विभीषण द्वारा सुन अत्यन्त प्रसन्न हुए और समुद्र का जल मङ्गवाकर उसको लङ्का का राज्याभिषेक कर दिया और उसे राक्षसों का राजा कहने लगे।

देखिये क्या ही राजनीति की चाल है! शत्रु के शत्रु को अपना मित्र बना लेने से शत्रु के घर का भेद मिल गया और इस चाल से सहज ही में शत्रु हार गया।

इस लिये जरूर शत्रु के शत्रु को अपना मित्र बनाना चाहिये। यह एक राजनीति की चाल है।

रणाभिलाषी रघुराज वर्य के
निकेत में डाल सुवर्ण वृष्टि को।
कुवेर ने राज्य सभी बचा लिया,
सर्वस्व खोओ मत अल्प के लिए ७१

महाराज रघु के विश्वजित यज्ञ कर लेने और समस्त ब्राह्मणों को दान दे देने पर कौत्सऋषि उनके पास गुरु दक्षिणा

माँगने आये। राजा के मृत्तिका पात्र में अपने अर्घ्य पाद्य करने से ही यह जान चुका था कि अब रघु के पास कुछ भी नहीं है। यह विचार वह वापिस जाने लगा, तब राजा ने उस मुनि को तीन दिवस की क्षमा मांग रोका और हवन शाला में चौथी अग्नि समझ पूजन कर बिठला दिया और आप विचार करने लगे कि पृथ्वी से तो मैंने सब धन खेंच लिया, अब कहां से इस विप्र के लिये इतना धन लाने का प्रयत्न करूं। यह सोचते हुये राजा का ध्यान कुबेर की सम्पति पर पड़ा। उसने विचारा कि कुबेर धनाधीश है और उस पर मैंने अभी आक्रमण भी नहीं किया है अतः एव कल प्रभात ही कुबेर को विजय कर इसे धन ला देना चाहिये। यह विचार सो गये, रथ में सब अस्त्र शस्त्र सजा लिये। यह राजा जब विजय प्रयाण करता था तब देवता भी दङ्ग हो जाते थे, क्यों कि इसके पराक्रम से इन्द्र भी तो दांतों में अंगुली दबा चुका था। कुबेर पर इसका प्रस्थान देख यक्षों ने उससे रघु का विचार जा कहा। कुबेर ने भी रघु राजा के पराक्रम को असह्य, प्रचण्ड तथा दुर्धर्ष समझ और उसके मनोभिलाप को जान यह सोचा कि जरा से वित्तके लिये लड़ाई ठान मेरे खजाने का क्यों नाश कराऊँ, यह मुझसे दबने का तो है ही नहीं, फिर पराजित हो क्यों अपयश लूं और धन सम्पत्ति गवाऊं। इस कारण पहले ही से उसे वांछित वित्त दे दूं तो ठीक होगा। ऐसा विचार उसी रात्रि को यक्षों द्वारा रघु के खजाने में सुवर्ण वृष्टि करादी प्रभात को सुवर्ण बरसा देख खजानचियों ने रघु से प्रार्थना की कि महाराज खजाने में सुवर्ण वृष्टि हुई है। यह सुन वह द्रव्य राजा ने उस कौत्स ब्राह्मण को दिलवा दिया।

सारांश यह निकला कि जरा सी बात के लिए बहुत का नुकसान कभी न करना चाहिये। नीति भी यही है कि बुद्धिमान वही जो थोड़े को देकर बहुत रक्षा करे।

[यह कथा रघुवन्श के ५ वें सर्ग में है]

सौ गालियां भी सुन चेदि राज की,
श्री कृष्ण ने उत्तर दे न एक भी।
गिरा दिया मस्तक काट, वीर यों,
न दुष्ट के साथ विवाद को करें ७२

जब राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया तब उन्होंने सब ही राजा महाराजाओं को निमन्त्रण दिया था। उसमें श्री कृष्ण चन्द्र भी पधारे। शिशुपाल चेदि देश का राजा भी वहां आया था। उस यज्ञ में पहिले पूजा किसकी हो, यह प्रश्न जब उठा तब राज सभा में स्थित प्रायः सभी राजाओं की यह राय ठहरी कि अग्र पूजा श्री कृष्ण की होनी चाहिये, क्यों कि सिवाय इनके उसका और कोई अधिकारी नहीं था। शिशुपाल इस बात पर बहुत बिगड़ा और अत्यन्त क्रोध कर उनको अपना बैरी जान, युधिष्ठिर और अन्य राजाओं को कहने लगा कि यह ग्वाल है, इसमें तुमने क्या आधिक्य देखा जो इसकी अग्र पूजा होने की राय देते हो? इसका क्या कुल

है, यह कौनसा राजा है, इससे यह कई हिस्से कम इज्जतदार है, गौचराने वाले की, अहीर के टुकड़ों से पेट भरने वाले की क्या अग्र पूजा ? इत्यादि कह कर श्रीकृष्ण को गालियां देने लगा। पर भगवान् श्री कृष्णने एक का भी प्रत्युत्तर नहीं दिया, उसकी गालियां सुनते रहे और गिनती की लकीर खेंचते रहे। जब वह निन्यानवें गालियां निकाल सौवीं गाली देने लगा कि भगवान् श्री कृष्ण ने सिंहासन पर बैठे हुए ही सुदर्शन चक्र को हुक्म दिया कि शिशुपाल का सिर काट डालो। झट से उसका सर धड़ से अलग हो पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इसका भाव यह है कि वीरों को बकवाद अच्छा नहीं लगता वे तो काम से मतलब समझते हैं। दुष्ट के साथ बक बक न करके चुपसे ही उसको यथोचित दण्ड देना चाहिये।

सूर्यास्त को देख हुआ अवध्य भी,
जयद्रथ ध्वस्त किया सुपार्थ ने।
श्री कृष्ण से कृत्रिम भानु को दिखा,
करो अवाध्यच्छल नीति शत्रु से ७२

अभिमन्यु का बध युधिष्ठिर के मुख से सुन कर अर्जुन ने जयद्रथ के बध करने की प्रतिज्ञा की कि हे युधिष्ठिर! मैं कल सूर्यास्त होने से पहले जयद्रथ को मारदूंगा। इसके अनुसार ही दूसरे दिन अर्जुन जयद्रथ से लड़ने गया। उधर अर्जुन की

की हुई जयद्रथ वध की प्रतिज्ञा सुन कर द्रोण; कर्ण आदिक ने जयद्रथ की रक्षा के लिये शकट व्यूह की रचना की (यह शकट व्यूह अत्यन्त दुर्भेद्य है) इसके बीच में जयद्रथ को रखा, चारों ओर अनेक महारथी कौरव योद्धा रहे। ऐसे दुर्भेद्य भी शकट व्यूह को अर्जुन ने तोड दिया और उन महारथियों का जो जयद्रथ के घेरे हुए थे पूरा पराजय किया। इस महा संग्राम में अर्जुन ने आलौकिक पराक्रम कर दिखाया परन्तु उन द्रोण, कर्णादि महारथियों का पराजय कर जयद्रथ के समीप पहुंचते, पहुंचते ही अर्जुन को दिन भर पूरा हो गया। सूर्य अस्त होने में कुछ ही देर थी। तब अर्जुन क्रोध में आ, जयद्रथ के पास पहुंचने का यत्न करता हुआ उसके चौगिर्द की सेना का संहार कर रहा था, पर जयद्रथ मध्य में रथ में बैठा इसे न दीख पड़ा। तब भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि अर्जुन ! तुम इस जयद्रथ को बिना कपट के नहीं मार सकोगे। मैं तुम्हें कहूं वैसा करो। शत्रु के साथ अबोध्य कूट नीति करना कोई डर की बात नहीं है। मैं सूर्य को सुदर्शन (चक्र) से ढांक देता हूं। अन्धेरा हो जायगा तुम होशियार हो बाण लिये तयार रहो। वह जयद्रथ सूर्य को अस्त समझ अन्धकार हुआ जान उकस २ कर सूर्य को देखे बिना नहीं रहेगा। बस वह उकस कर गर्दन ऊँची करै कि तुम निशाना मार दो। काम सफल हो जायगा। इस कूट नीतिं को सुन अर्जुन ने जो "आज्ञा" कह कर बाण तैयार किया। इधर भगवान् ने सुदर्शन चक्र को स्मरण किया, याद करते ही वह भगवान् के हाथ पर आ चमका; भगवान् ने उससे कहा, जाओ सूर्य को अपनी आड में ले अन्धकार फैलादो। जब अर्जुन जयद्रथ के बाण मारे; तब हट

जाना। सुदर्शन चक्र ने वैसा ही किया, अन्धकार देख अर्जुन की प्रतिज्ञा झूठी होने की खुशी में जयद्रथ बार बार उचक २ कर सूर्य को देखता था, एक बार रथ में से और भी ऊंची गर्दन निकाल कर वह सूर्य को देखने लगा कि कृष्ण भगवान के संकेत से अर्जुन ने अपने तीखे और प्रचण्ड बाण जयद्रथ के कण्ठ पर ताक कर ऐसा मारा कि उसका शिर कट कर उसके पिता वृद्ध क्षत्र की गोदी में जा पड़ा।

[यह कथा महाभारत के जयद्रथ वध पर्व में है]

इसका सार यह है कि शत्रु से कूट नीति कर भी अपने प्राण बचाना पाप नहीं। परन्तु वह कूट नीति अबोध्य हो अर्थात् शत्रु से न पहचानी जा सके। अन्यथा वह कूट नीति नहीं।

विलाव को देकर वास पास में,
स्वबाल नाशाहित पाचि वृन्द से।
मारा गया गीध जरद्गव स्वयं,
न दुष्ट को आश्रय दो स्वगेह में ॥७४॥

गंगा तीर पर गृद्धकूट पहाड़ पर एक बड़ा पुराना पाकर का वृक्ष था, उस के खोखले में एक अन्धा गीध रहता था।

उस का नाम जरद्गव था। उस को सामर्थ रहित जान उस वृक्ष पर रहने वाले सब पक्षी अपने खाने में से कुछ २ खाना उसे भी देते थे। इससे वह निर्वाह करता, वहीं रहता और उन पक्षियों के बच्चों की रखवाली करता था। एक दिन दीर्घ कर्ण नाम का बिलाव वहां आया और उसने बहुत पक्षियों का वास देख उन के बच्चों को खाने की ठानी। वह आगे बढ़ा। बच्चों ने हल्ला किया उसे सुन कर गृद्ध बोला, कौन है? बिलाव ने गीध को देख कर सोचा कि अब भगें भी तो कैसे भगें, इसे ही विश्वास दिलाकर मतलब बना लेना चाहिये, यह सोच बोला, मैं बिलाव हूँ। आपको प्रणाम है। गीध ने कहा, अलग हट। नहीं तो मार दूंगा। बिलाव ने यह सुन कर कहा महाराज! बिलाव हूँ इस नाम या जाति मात्र से ही मैं मारने लायक हूँ क्या? गीध ने पूछा क्यों आया है? वह बोला मैं यहां गङ्गा में नहाने वाला, मांस से परहेज़ रखने वाला ब्रह्मचारी हूँ। चान्द्रयण व्रत करता हूँ। आप को विद्या वृद्ध जान उपदेश सुनने आया हूँ। गीध बोला! बिलाव को मांस में रुचि होती है और यहां पक्षियों के बच्चे हैं इस लिये मैं मना करता हूँ। बिलाव ने भूमि और कान को छू कर कहा महाराज! मैं चान्द्रायण व्रत करने वाला हूँ, मांस नहीं खाता हूँ, यह पहिले ही कह चुका हूँ। (अहिंसा परमो धर्मः) ही मेरा मुख्य ध्येय है। इत्यादि बातों से गीध को विश्वास दिलाकर बिलाव वहां रहने लगा। गीध ने भी उस की इतनी बात सुन उसे अपने खोखले में जगह दे दी। अब तो वह चुपचाप एक २ बच्चा पकड़ कर खाने लगा। यों करते कुछ दिन हो गये कि जिन के बच्चे नहीं मिले, उन पक्षियों ने खोज करना प्रारम्भ किया, तब वह बिलाव चुपके

से चल दिया। बच्चों को ढूंढ़ते हुये पक्षियों ने गीध के घोंसले में हड्डियां पाकर यह समझ लिया कि हमारे बच्चों को इस गीध ने ही खाया है। इस विचार से सब ने मिलकर उस निर्दोष गीध को चोंचों से मार डाला।

इस लिये यह ध्यान रखने की बात है कि दुष्ट को अपने पास न टिकने दो। वह तुम्हें बिगाड़ने का प्रयत्न करेगा, इस में सन्देह नहीं।

[यह कथा हितोपदेश में मिलती है ।]

विनाश पा शान्तनु ने स्वपुत्र का,
होके दुखी, पुत्र-वियोग शाप दे।
सुपुत्रवान् कोशलराज को किया,
तपस्वियों का वर तुल्य शाप है ॥७८॥

जब राजा दशरथ ने वन में शिकार खेलते समय हाथी के नाद की शङ्का से तालाब से घड़ा भरते हुये श्रवण कुमार को शब्दवेधी बाण मारा, तब वह हाय तात ! यों पुकार कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह शब्द सुन राजा वहां पहुंचा और उसे देख कर मुनि पुत्र है, इस कारण-ब्रह्म हत्या का भय करने लगा। पर वह कुमार रुकते २ अक्षरों में बोला कि मैं ब्राह्मण नहीं हूं। मेरे माता पिता अन्धे हैं, उनके लिये मैं पानी भरने

आया था-इस प्रकार कह वह श्रवण मर गया। राजा ने उसे उठा कर उसके माता पिता के पास ले जा अपना अज्ञान कृत अपराध सुना क्षमा मांगी और बहुत पछतावा किया। माता पिता ने अपने सुपुत्र का बध सुन अत्यन्त विलाप किया और शोक में राजा दशरथ को शाप दिया कि तू भी पुत्र शोक में ही मरेगा। यह शाप सुन राजा ने उन से विनय की कि महाराज! मुझे यह स्वीकार है क्यों कि आप तपस्वी हैं, मुनि व्रत धारण कर रक्खा है- इस लिये आप की वाणी सफल होगी। मेरे पुत्र भी नहीं है पर अब मुझे पुत्रोत्पत्ति की आशा हो गई। यह कह क्षमा मांग राजा घर को आ गया।

[यह कथा रघुवंश के ६ वें सर्ग में है।]

राजा हरिश्चन्द्र मशान भूमि में,
चाण्डाल के भी बन दास तो रहे।
परन्तु छोड़ा निज सत्य को नहीं,
विपत्ति में भी दृढ़ धर्म पै रहो॥ ७६

महाराजा हरिश्चन्द्र बड़े प्रसिद्ध सत्यधारी थे। इनने अपना सत्य खूब निभाया। विश्वामित्र ने इनके सत्य की परीक्षा करने को बहुत उद्योग किया और बड़ी निठुराई धारण की पर इस राजा ने अपना सत्य ज़रा भी न डिगने दिया। इन्होंने अपना राज्य छोड़ा, स्त्री बेची, बच्चे बेच डाले, आप बिके-डोम के दास

हो श्मशान में पहरा दिया आदि कई आपदा सहीं। पर तो भी अपने सत्य का पालन पूरा किया। यही नहीं बल्कि, उसी धर्म सङ्कट में इन का पुत्र रोहिताश्व मरगया। रात्रि को उसे ले शिर पर रख रानी बिना कफ़न श्मशान में अकेली गई। वहाँ नृपति पहरा दे रहे थे। रानी ने उन्हें पहचान लिया और बहुत विलाप कर पुत्र का दाह कर्म करने को तैयार हुई। किन्तु नृप ने अपना धर्म जान बिना कफ़न लिये उसे जलाने नहीं दिया। रानी ने कहा कफ़न का तो वस्त्र ही नहीं, कहां से दूं। इस पर राजा बोला कि नहीं है तो मैं क्या करूं, मैं तो मेरे स्वामी की आज्ञा का पालन करूंगा। तुम तुम्हारी साड़ी के टुकड़े में से ही आधा फाड़ दो। यह सुन रानी बहुत रोई और अपनी दशा पर विचार करती हुई ज्यों ही चीर फाड़ने लगी कि विश्वामित्र ने सब माया हटा दी। भगवान् इनके सत्य की दृढ़ता देख बड़े प्रसन्न हुए। इन्द्र विमान ले आया, रोहित भी जाग्रत होगया। फिर राजा, रानी, पुत्र सब उस डोम के विमान द्वारा स्वर्ग में चले गये।

[यह कथा देवी भागवत में विस्तार पूर्वक मिलती है।]

तात्पर्य इस का यह निकला कि विपत्ति काल में धर्म का हर रूप से पालन करना चाहिये। सुख में तो सब कोई धर्म का डङ्का बजा सकता है। दुःख में धर्म रखना ही धर्म रखना है, अतः उस समय धर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिये।

श्रीकृष्ण से संगर ठानता हुआ,
सोते हुए श्री मुचकुन्द को जगा।
विनाश पाया यवनाधिपाल ने,
कभी न सोते जन को जगाइये॥ ७७

मुचकुन्द इक्ष्वाकुवंश में मान्धाता के पुत्र थे। ये बड़े वीर और धर्म युद्ध करने वाले थे। इन्द्रादि देवों के प्रार्थना करने पर अनेक बार इन ने संग्राम में देवों की सहायता की थी। एक बार देवों से इन ने यह वर मांगा था कि मुझे नींद से कोई न जगावे। देवों ने यह वर दिया कि जो तुम्हें सोते हुए को जगावेगा वह तुम्हारी दृष्टि से भस्म हो जायगा। भगवान् श्री कृष्ण इस बात को ध्यान में रख कर द्वारिका को रोकते हुए काल यवन के सन्मुख बिना शस्त्र लिये (खुले हाथों ही) निकल आए। काल यवन ने श्री कृष्ण जी का सारा हाल नारद जी से सुन लिया था। उसके अनुसार ही भगवान् को पहचान वह भी शस्त्र छोड़ श्री कृष्ण को पकड़ने दौड़ा। आगे भगवान् पीछे काल यवन दौड़ता था। श्रीकृष्ण भी योग माया से उसे ऐसा चरित्र दिखाते हुए कि दौड़ता हुआ वह काल यवन अब पकड़ लिया अब पकड़ लूंगा यों २—४ पैंड़ की दूरी पर चलता रहा, पर छूने तक न पाया। यों दौड़ते हुए श्री कृष्ण उसे एक पहाड़ की गुफा में ले गये, जहां मुचकुन्द सो रहे थे। वहां भगवान् कुछ आगे निकल गये। मुचकुन्द को सोया देख काल यवन ने यह समझा कि यह कृष्ण ही यहां छुप कर सो गया है। ऐसा समझ कर उस सोए हुए मुचकुन्द को लात मार जगा दिया। लात खाते ही मुचकुन्द

जग उठे। आंख खोल क्रोध कर इसे देखते थे कि देखते ही यह कालयवन भस्म की ढेरी हो गया, फिर भगवान ने आकर मुच-कुन्द को दर्शन दिये और मुचकुन्द ने श्री कृष्ण की स्तुति प्रार्थना की।

[यह कथा भागवत के दशम स्कन्ध के ५१ वें अध्याय में है।]

इसका भावार्थ स्पष्ट ही है कि प्राणी मात्र को सोते हुए को जगाना पाप ही है,इस लिये सोते हुए को कभी न जगाओ।

उद्दण्ड दुर्योधन की अनीति से,
समस्त ही कौरव वृन्द युद्ध में।
मारे गये पाण्डव से तुरन्त ही,
कुराज के आश्रित हो रहो नहीं। ७८

यह बात महाभारत में सुप्रसिद्ध ही है कि दुर्योधन वि-द्वान होने पर भी अविनय वाला और रूखा तथा पाखण्डी और स्वार्थी था। दुर्योधन को दूसरों को बढ़ती देख डाह हुआ करता था। वह मन का बड़ा पापी था। वह यह सोचता रहता था कि त्रिलोकी की सम्पत्ति मुझे ही मिल जाय तब अच्छा हो। उस ने पाण्डवों के साथ बड़े २ अन्याय और अनर्थ किये, यहां तक भी उन के साथ घात किया कि कभी उन्हें जहर दिया, कभी लाख का भवन बना पांडवों को उस में रख कर आग लगवा दी, और

जूआ खेलकर शकुनि के कपट के पाशों से पाण्डवों को हरा दिया। राज्य छीन लिया। वनवास दिया। द्रौपदी की दुर्दशा की, इत्यादि। इतना करने पर भी उसे बड़े २ बुद्धिमानों ने समझाया, पर उस दुर्बुद्धि के कुछ भी असर न हुआ। वह अनीति के मार्ग पर ही चलता रहा। उस का यह फल हुआ कि महाभारत का घोर संग्राम हुआ और उस में पांचों पाण्डवों की (जो धर्म के अनुकूल न्याय के साथ व्यवहार करते थे) श्री कृष्ण की सहायता से विजय हुई और समस्त कौरवों का नाश हुआ। यह सब दुर्योधन की अनीति का ही फल समझना चाहिये।

इस लिये बुद्धिमान पुरुषों को चाहिये कि कुराज का आसरा लेकर न रहे। कुराजा के आसरे से प्रजा को भी बिगाड़ सहना पड़ता है।

मयात्मजों को पितृ-वित्त के लिये,
निहार युद्धस्थित युक्ति से भगा।
लिया सभी पुत्रक ने महाधन,
रहो स्फुरद्बुद्धि सुकार्य काल में ।।७९।।

यह पुत्रक ब्राह्मण एक असहाय दीन ब्राह्मणी का पुत्र था। इसका पिता अपने दोनों भाइयों को साथ ले दुर्भिक्ष पड़ने के कारण इसकी माता को छोड़ कहीं निकल गया था। वह जब गर्भावस्था में था, तब इसकी मा अपने पति के मित्र

यज्ञदत्त के यहां रह कर गुजर करने लगी। वहां यह पुत्रक पैदा हुआ। इस पर माता का बहुत स्नेह था। इसकी माता को महादेव ने स्वप्न में यह कहा था कि इस पुत्र के शिरहाने सोने से उठने के पीछे नित्य सुवर्ण मिलेगा, और यह राजा होगा। उसके अनुसार ही प्रभात में नित्य सुवर्ण पुत्र के सिरहाने मिलने लगा। तब तो इसकी माता सब दुःख भूल गई। यह कुछ बड़ा हुआ, पढ़ने लिखने लगा। यह वृत्तान्त इसके पिता के मित्र यज्ञदत्त ने सुना और देखा तो यह भी इसे सत्कार के साथ रखने लगा, परन्तु थोड़े दिनों के पीछे जब पुत्रक होशियार; धन वैभव का राजा हो गया, तब यज्ञदत्त ने धन लोभ से इसे बहकाया और यह कहा कि पुत्रक! तुम्हारा पिता भाइयों के साथ अकाल में भग गया है। इस कारण तुम धन बांटो, दान दो। पुत्रक ने वैसा ही किया। इसका दान सुन कर वे इसके पिता और चाचा भी कुछ दिनों में आगये। इसके सब धन वैभव को देख उनने इसके धन लोभ से घात विचार विन्ध्यवासिनी के मन्दिर में ले जा कर वहां वधिकों को गुप्त रख दर्शनों को जाते हुये इसे मरवाने लगे। वधिकों को यह बुद्धिमानी से रत्नजटित कङ्कण दे वहां से प्राण बचा कहीं जङ्गल में निकल गया। वन में जाकर दूर पर पहुंचा तो क्या देखता है कि दो आदमी कुश्ती कर रहे हैं। इसने पूछा तुम क्यों लड़ते हो? तो वे बोले हम दोनों मय दानव के पुत्र हैं। यह हमारा अन्न-पूर्ण पात्र है, इसमें जो चाहो वही भोजन मिलता है। एक यह लकड़ी है, इससे जो लिखा जाता है, वह सत्य होता है। ये दो पादुकाएं हैं (पावड़ी हैं) इनको पहरने से खेचरी सिद्धि मिलती है। यह महाधन है। अब इन पर हम इस लिये लड़ते हैं कि जो बलवान् हो वही इस धन को पावे।

यह सुन बुद्धिमान् पुत्रक बोला लड़ाई करना तो व्यर्थ है। यही पण क्यों न करलो जिससे निबटारा हो जावे कि दोनों ही दूर तक दौड़ो, कुछ सीमा करलो, वहां तक दौड़ कर जो पहले आवे वही बलवान है । वही इस धन को लेवे। यह सुन वे बहुत प्रसन्न हो दोनों ओर दोनों दानव दूर तक दौड़ गये। बुद्धिमान पुत्रक ने उस धन के कारण रूप महाधन को, जिनमें अद्भुत सिद्धियां थीं, ले लिया।

[यह कथा सरित्सागर के तीसरे तरंग में है।]

जैसे पुत्रक ने समय २ पर बुद्धिमानी की, वैसे ही कार्य पड़ने पर तुम भी स्फुरद्बुद्धि बनने की चेष्टा करो।

न राज्य से राघव मत्त मोद से,
हुए न दुःखी वन के प्रवास से।
हे भाइयो! यों सुख दुःख काल में,
न हर्ष के दास बनो न शोक के ॥८०॥

रामायण में यह बात श्रीरघुनाथ जी महाराज के स्वभाव की परिस्थिति की बहुत प्रसिद्ध है कि वे मर्यादा पुरुषोत्तम हुये हैं। जब उनके पिता दशरथ महाराजा ने उनको राज्य देना निश्चित कर अभिषेक की सामग्री लगा सिंहासन पर बिठाने को बुलाया, उस समय तो इनके मुखमण्डल पर

कोई विशेष हर्ष की कला न दीख पड़ी. और जब दैवयोग से कैकेयी के वचनानुसार राज त्याग वन को जाने लगे, तब राज्य की पोशाकें उतार वनवास के लिये भोज पत्र आदि धारण कर कमण्डलु ग्रहण किया तब रामचन्द्र के मुखारविन्द पर कोई शोक या दुःख से उदासी का लेश भी नहीं झलका। वैसे उत्कट हर्ष, वैसे घोर कष्ट के समय में श्री राघव का स्वभाव एक सा ही रहा: इस बात का प्रभाव उस समय के बड़े २ राजा महाराजा और योगी लोगों पर बहुत ही असर कर गया था।

इस लिये महानुभावों का यह स्वभाव प्रत्येक पुरुष को अनुकरण करने के योग्य है कि हर्ष और शोक के अधीन हो कर मद में फंस न बैठना चाहिये। ऐसा स्वभाव रखने से अहंकार और अधीरपन दोनों ही, जो बड़े दोष हैं, पास नहीं आते हैं।

पराक्रमी वीर बली रिपुघ्न ने,
रणस्थली में मधु दैत्य मार के।
स्वराज्य रोपा उस के सुदेश में,
सदा भुजोपार्जित भोग भोगिये ।८१

श्री रामचन्द्र के लंका विजय कर अयोध्या में राज्य करने के कुछ काल बाद इधर एक मधु नाम का दैत्य बहुत उपद्रव मचाने लगा। वह ब्राह्मणों को और साधुजनों को बहुत

कष्ट देता था। देश २ गांव २ में उसका डर छा गया था। तब प्रजा लोग मिल कर महाराजा श्रीरामचन्द्र को अपना दुःख निवेदन करने आये। श्री राघव ने मधु का उपद्रव सुनते ही शत्रुघ्न को सेना देकर मधु को मारने के लिये भेज दिया। जहां बलवान् शत्रुघ्न ने भी मधु के साथ युद्ध कर अपने पराक्रम से उसे मार कर उसकी मधुपुरी में अपना राज्य जमा लिया। ठीक बात है कि वीर पुरुष भुजोपार्जित भोग भोगने से ही राजी रहते हैं। पराये वैभव भोगने से उन्हें यथेष्ट सन्तोष नहीं होता है।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में है।]

इस उदाहरण से आप लोग भी अपने पुरुषार्थ से धन सम्पत्ति पैदा करना सीखो।

निहार सीता वध के लिये गये,
  दशास्य को शान्त किया सुपार्श्व ने।
हिताहितों को समझा बुझा सर्व;
  रोको सदा मालिक को अकार्य से॥८२

जब इन्द्रजीत का वध लक्ष्मण जी से हुआ, तब इस समाचार को पा रावण बहुत शोक से दब गया और चिन्ता के साथ बहुत रोया और बेहद क्रोध किया। फिर उसको यह

कुबुद्धि उपजी कि जिस संग्राम में मेरा पुत्र मरा है उस संग्राम की जड़ यह सीता है। इस कारण इसे मार देना चाहिये। यह सोच वह दुष्ट रावण क्रोध में आ खड्ग हाथ में ले सीता के समीप गया। उस समय इसके हित चाहने वालों ने समझाया परन्तु यह न मान कर अशोक वाटिका में पहुंच गया। सीता ने रावण को खड्ग लिये हाथ से आते हुये देख बहुत चिन्ता की और कहा कि हा राम! अब क्या होगा, यह दुरात्मा तो मुझे मार देगा। महाराज राम व लक्ष्मण क्या करेंगे? इत्यादि आगे के अनर्थों को सोचने लगी। इतने में रावण के एक प्रधान मन्त्री सुपार्श्व ने आ कर रावण को बहुत रोका और समझाया कि महाराज! आप वीर धुरन्धर हो, यह क्या अनर्थ है जो स्त्री पर खड्ग उठाये हो! इसके वध से आपका शूरत्व नष्ट हो जायगा। इस क्रोध को आप हमारे साथ रण में राघव पर छोड़िये, जिससे सफलता प्राप्त हो। इस अधर्म से बचो और आज कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी है इस कारण आज रण का प्रारम्भ कीजिये कल अमावस्या को आप विजय करेंगे - इसमें सन्देह न जानिये। इत्यादि सुपार्श्व की बात मान कर रावण वापिस लौट आया और राम से रण करने की तैयारी करने लगा।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के युद्धकाण्ड में ९२ वे सर्ग में है]

इस प्रकार तुमको भी चाहिये कि अपने स्वामी को यदि वह अकाज में लगे तो उसे हित सहित समझा बुझा कर उसे बुरे काम से बचाओ और भले में प्रवृत्त करो। यही सेवक का धर्म है।

— —

वधार्थ आते अपने निहार के,
वाल्मीकि को प्राप्त हुए महर्षि ने।
ज्ञानी किया देकर बोध साम से,
सुसान्त्वना से वश मूर्ख को करो ॥८३॥

महामुनि वाल्मीकि जन्म से भील (जो व्याधे का काम करते हैं) थे। ये धनुष बाण लिये अपने कुटुम्ब पालन के लिये जंगल में देशों की सीमा पर इधर उधर घूमते शिकार करते मृग वराह ससे आदि मार लाते या कोई राहगीर आता दीख पड़ता उसे लूट खसोट कर धन छीन लेते यों निर्वाह करते थे। एक दिन उस वन में एक महात्मा तत्व-ज्ञानी सिद्ध पुरुष पहुंचवान मुनि उधर से जा निकले, जिधर ये धनुष लिये किसी को देख ही रहे थे। मुनि को देख व्याध ने अपना बाण धनुष पर लगा मारने की ठानी, इतने में महात्मा ने इसके सब हाल को ध्यान से जान लिया और उसे बुलाया कि तू क्या चाहता है? यह सुन व्याध बोला कि मैं तुम्हें मार कर तुम्हारा धन लूंगा और कुटुम्ब का पालन करूंगा। तब वे मुनि बोले यह बड़ा बुरा कर्म है। तू निर्दोष मनुष्यों को मारता है, तुझे बड़ा पाप होगा, यमलोक में तुझे बहुत यातनाएं भोगनी पड़ेंगी। तब वह बोला मेरी तो यह वृत्ति ही है। वन में शिकार कर ५-७ जीवों को नित्य मार कर खाता हूं। वे महात्मा बोले तू अपने पेट के लिये ही इतनी हिंसा करता है, यह बड़ा पाप है। वह बोला मैं मां बापों को भी तो खिलाता हूं। तब महात्मा बोले अरे पाप तू करता है तो तुझे ही सजा भोगनी पड़ेगी मा

बाप को नहीं। तब वह बोला वाह हम सभी मिल कर खाते हैं तो सब को ही भोगनी पड़ेगी। तब महात्मा बोले जल्द तेरे माता पितादि कुटुम्बियों से पूछ कर आ कि मैं जो यह घोर हिंसा कर लाता हूं इस का पाप मैं ही भोगूंगा कि तुम भी भोगोगे। वह व्याध बोला तुम भाग जावोगे तो नहीं। महात्मा बोले हम शपथ करते हैं कि तू आवेगा जब तक हम यहाँ ही बैठे रहेंगे। यह सुन व्याधा घर गया और उसने माता पिता आदि कुटुम्बियों से यह बात वैसे ही पूछी। तब माता पिता बोले कि वाह उस हिंसा का पाप हम क्यों भोगेंगे! तू ही तेरी भोगेगा। उन जीवों को तू ही मारता है या हम। हम तो खाने के संगी हैं। यह सुन वह व्याध विराग सा धारण किये हुये वहीं आया जहां वे महात्मा बैठे थे। आकर उसने मुनि के चरणों पर सिर झुकाया और कहा कि मैं क्या करूं? अज्ञान वश मैंने इतने दिन यह कुकर्म किया। अब पछताता हूं। अब आप मुझे इस घोर कष्ट से बचाइये। यह जिज्ञासा देख महात्मा ने उसे तत्वोपदेश ऐसा दिया कि जिस से प्रभाव से वह व्याध-पना छोड़ ऐसा प्रभावशाली मुनि और विद्वान् हुआ कि जिस का यश आज तीनों लोकों में चमक रहा है। जो आदि कवि कहला गये फिर उन का नाम वाल्मीकि हुआ।

[यह कथा आनंद रामायण में मिलती है।]

इस कारण मूर्ख को सान्त्वना से (समझाने से) वश करना चाहिये। वह दण्डादि उपायों से उतनी जल्दी वश में नहीं होसकता, जितना जल्दी समझाने से।

हो शूद्र का सेवक वीरवर्य ने,
श्री चण्डिका के पद में चढ़ा दिया।
स्वपुत्र को; यों हित साधते रहो,
निजान्न दाता जन का सुभक्ति से॥८४॥

वीरवर मालव देश का एक ब्राह्मण था। वह शूर और धीर साहसी बुद्धिमान था। एक बार वह अपनी स्त्री धर्मवती और पुत्री वीरवती तथा पुत्र सत्ववर को साथ ले कर विक्रमपुर में विक्रमतुंग महाराज के पास ५०० पांच सौ मुहर नित्य वेतन पर नौकर हो गया और राजा के द्वार पर पहरा देता था। राजा ने वीरवर की जाँच करना चाहा। एक दिन रात को एक स्त्री के रोने की आवाज सुन राजा ने वीरवर को कहा कि यह कौन रो रहा है, इस का हाल तो लाओ। वीरवर जो आज्ञा कह चला गया। पीछे से राजा भी चुपचाप परीक्षा के लिये चला। वीरवर वहां से थोड़ी दूर गया तो तालाब पर एक स्त्री रोती हुई दीख पडी। उसे रोने का कारण पूछने पर उस ने कहा कि मैं पृथ्वी हूं। यह राजा परसों मर जायगा। इस का मुझे बहुत दुःख है, इस कारण रोती हूं। वीरवर बोला कोई उपाय भी है कि जिस से यह बचे। पृथ्वी देवी बोली कि हाँ उपाय है। वह तेरे ही हाथ में है कि यदि तू चण्डिका के अपना पुत्र वरदान करदे तो यह राजा चिरंजीवी हो जावे। वीरवर ने यह सुन प्रसन्न हो वहाँ से घर जा अपनी स्त्री से यह हाल कहा तो उसने भी खुशी से हां करली और पुत्र को जगा कर कहा। तब पुत्र ने भी इस काम से अपने को धन्य माना। यों

सब के सब सलाह कर रात ही को चण्डिका देवी के मन्दिर में गये और वीरवर ने अपनी तलवार से भगवती की प्रार्थना की कि हे देवि ! इस पुत्र के बलिदान से प्रसन्न हो राजा को चिरजीवी कर । यों कह झट से सिर काट चढ़ा दिया । फिर उस के दुःख से वीरवती भी मर गई । लड़के और लड़की को मरा जान धर्मवती ने भी अपने प्राण समर्पण कर दिये । वीरवर ने सब कुटुम्ब को स्वर्ग में गये देख राजी से यह चाहा कि अब मैं भी मेरे प्राणों से चण्डिका को पूजलूं तो ठीक हो । यह विचार कर खड्ग उठाता था कि देवी जी प्रसन्न होकर बोली वीरवर ! मैं तेरी स्वामी भक्ति पर प्रसन्न हूं । तू मांग । तब वीरवर ने हाथ जोड़ राजा की प्रसन्नता की और उन तीनों का जीवित होने का वर मांगा । देवी जी एवमस्तु कह अन्तर्धान हुईं । वे तीनों जीवित हो गये । वीरवर उन्हें लेकर पहुंचा राजा के द्वार पर जा खड़ा हुआ । राजा ने यह सब हाल आंखों से देख ही लिया था । प्रभात होते ही उसे बुला उसका पूर्ण सम्मान किया और उसे कई गांव दिये और बराबर का राजा बना दिया ।

(यह कथा सरित्सागर अलंकारवती लम्बक से उद्धृत की है ।)

इस कारण अपने स्वामी का तन मन से हित करना सेवक का धर्म है ।

ज्यों देव शर्मा द्विज सत्तुपात्र ले,
भ्रान्त आगन्तुक सोचता हुआ !

स्वभाण्ड को फोड पड़ा विषाद में,
अनागतों के न विचार में पड़ो ॥८५॥

एक देवशर्मा नाम का ब्राह्मण दरिद्री था। वह एक दिन कहीं गांव में जाता हुआ किसी के यहां से सत्तू की भरी हुई हांडी ले आया। सत्तू से भरी हांडी को पा कर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और विचारने लगा कि इस सत्तू को वेच कर एक बकरी ले लूं और उसके बच्चे बच्ची होंगे। फिर उन बच्चों के भी बड़े होने पर बच्चे बच्चो होंगे। यों थोड़े दिनों में बहुत हो जांयगे। तब उन्हें वेच कर गी भैंस खरीद लूंगा। वे भी बच्चे देंगी, तब मेरे पास बहुत सो गायें व भैंसे हो जांयगी। फिर उन का दूध, घी......वगैरह वेचूंगा, तब मुझे बहुत धन मिलेगा। फिर उस धन से घोड़े, घोड़ियां खरीद लूंगा, फिर उन्हें पाल पोष कर तिगने, चौगने मूल्य पर वेचूंगा और उनके बच्चे बच्चियों का तो मुझे बहुत ही लाभ होगा। इस प्रकार मैं धनाढ्य हो जाऊंगा तब मुझे कोई कोई सेठ लड़की व्याह देगा, फिर मेरे भी लड़के, लड़की होंगे, फिर मैं उन की शादी करूंगा। यों कर मैं बड़ा कुटुम्बी हो जाऊंगा। तब काम करने वाले और नौकर रख कर मैं भी आराम करूंगा, फिर कोई समय में मेरी वहू मुझे जगावेगी कि रसोई तैयार है, भोजन को चलो। तब मैं लात मार कर कहूंगा, बक २ ज्यादा न कर, चल आता हूं। यह आधा ही बोला कि लात ज़मीन पर पड़ने से शिर पर रखी हुई, वह सत्तू की हँड़िया ज़मीन पर फूट गई। वह ब्राह्मण देवता कोरे ही रह गये और होश में आकर पछताने लगे कि ओहो! मैंने यह आगे की हालत सोचते २ यह पाई हुई वस्तु भी खो दी।

[हंसनीति कथाओं से यह उपदेश पूर्ण कथा उद्धृत की है]

इस का सार यही समझो कि आगे की बात को सोच कर चिन्ता या हर्ष दोनों ही न करो। तुम सोचते हो, वह हो, कि न जाने क्या हो। पुरुष के भाग्य को देव भी नहीं जानता,तो मनुष्य की क्या बात ! इस लिये वर्तमान को अनुभव करते हुये कर्त्तव्य पालन करते रहना ही उन्नति का मूल है।

अण्डे वहा टिट्टिभ के समुद्र को,
होके पराभूत खगाधिराज से।
देने पड़े वापिस ही सलज्ज हो,
न साहसी से शठता करो कभी ॥ ८६ ॥

समुद्र तीर पर एक टिट्टिभ दम्पति (टिटोड़ी का जोड़ा) रहता था। संयोगवश टिट्टिभी गर्भवती हुई । वह प्रसव काल समीप होते ही टिट्टिभ से बोली कि अब मेरे प्रसूति का समय आ गया, कोई एकान्त स्थान ढूंढ़ लो । टिट्टिभ बोला कि यही स्थान ठीक है। टिट्टिभी ने जवाब दिया कि स्वामिन् समुद्र की वेला है, यहां तो समुद्र की तरङ्गों से मेरे अण्डे बह जांयगे। यह सुन टिट्टिभ बोला क्या मैं निर्बल हूँ, जो समुद्र मेरे अण्डे बहा लेगा ? टिट्टिभी बोली स्वामिन् ! समुद्र में और आप में बहुत अन्तर है। तब टिट्टिभ के कहने से वह वहां ही रही। समय पा कर उसने अण्डे दिये। समुद्र ने भी उस दिन टिट्टिभ की बात सुनली थी। इस कारण उसके सामर्थ्य जानने को टिट्टिभ के अण्डे बहा लिये। टिट्टिभी दुःखित हो टिट्टिभ से

कहने लगी कि देखलो मैं जो कहती थी, वही हुआ। समुद्र ने मेरे अण्डे ले लिये। यह सुन वह टिट्टिभ उसे "प्रिये डरो मत। मैं अभी इसका उपाय करता हूं।"—यह कह कर सब पक्षियों को इकट्ठे कर अपना दुःख कह कर सबको अपना सहायक बना एकता कर गरुड़ के पास जा कर अपना दुःख कह सुनाया कि भगवन् आप जैसे हमारी जाति के रत्न और राजा हैं, तो भी मुझ निरपराध के अंडे समुद्र ने बहा लिये। इतनी बात सुन गरुड़जी ने भगवान् से निवेदन किया। तब भगवान् ने समुद्र को आज्ञा दी कि इस टिट्टिभ के अंडे दे दो। भगवान् की आज्ञा सिर पर रख समुद्र ने टिट्टिभ के अण्डे ज्यों के त्यों लादिये और लज्जा के मारे फिर ऐसा काम न किया और टिट्टिभ के साहस की सराहना की।

[यह कथा हितोपदेश और पञ्चतन्त्र में मिलती है और कथा सरित्सागर में शक्ति यशोलम्बक में मिलती है, परन्तु वहां यह भेद है कि गरुड के कहने से भगवान् ने अग्नियास्त्र से समुद्र को धमका कर टिट्टिभ के अण्डे दिला दिये। और सब समान है।]

इससे यह सीखना चाहिये कि साहसी पुरुष से शठता या छेड़ छाड़ करना अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा का ह्रास करना है। मनुष्य की शक्ति, पहुंच और सहाय आदि सब सोच कर वैर विरोध मित्रतादि करना चाहिये। विना सोचे समझे नहीं करना।

गन्धर्व से गायन नाच सीख के,
रहा सुखी पार्थ विराट गेह में।
विद्या कलाएँ पठनीय हैं सभी,
लोगो! न जाने कब कौन कार्य हो ८७

जब अर्जुन तपस्या कर इन्द्रादि लोकपालों से अस्त्र ग्रहण कर चुका, तब वह इन्द्रलोक में गया। वहां इन्द्र की सम्मति से देवताओं ने पूर्ण सत्कार किया। अर्जुन भी वहां हर्ष के साथ रहा। इन्द्र की सभा में गया। वहां का वैभव देख बहुत प्रसन्न हुआ। इन्द्र के भवन में रहते हुये अर्जुन को इन्द्र ने यह उपदेश दिया कि हे पार्थ! तुम चित्रसेन गन्धर्व से नाचना गाना और बाजा बजाना भी सीखलो। यह संगीत विद्या तुम्हें काम देगी। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। यों कह अपने मित्र चित्रसेन गन्धर्व को बुलाकर अर्जुन को गान वाद्य नृत्यकला अच्छे प्रकार से सिखलादी। वहां अर्जुन ने यह संगीत विद्या पूर्ण रीति से सीखी और ५ वर्ष तक रहे। उसका यह फल हुआ कि जब अज्ञात वास में पांचों पाण्डव विराट् के रहे, तब यह विद्या ऐसी काम आई कि अर्जुन बड़े आनन्द से दुःख के दिन बिताते थे। इसे वे कष्ट के दिन इस संगीत विद्या के प्रताप से सुख मय ही बीतते दीख पड़े। वहां विराट् की पुत्रियों को नाच गायन और बाजा सिखाने के लिये यह अर्जुन बृहन्नला नाम से नौकर हो रहे थे।

[अर्जुन के नृत्य गायन वाद्य सीखने की कथा महाभारत के वनपर्व में इन्द्रलोकाभिगमन पर्व में है।]

इस कारण विद्या और कलाएं सभी प्रकार की सीखना चाहिये। न मालूम किस समय कैसा काम आ पड़े। सब विद्याएं जानने वाला संसार में कहीं कष्ट नहीं पाता है।

सुनीति वाले विदुरोपदेश को,
न मान के पंडित धर्मराज ने।
अनेक ही भांति विपत्तियं सहीं,
हितैषियों के उपदेश में चलो ॥८८॥

जब दुर्योधन के वचनों को मान, धृतराष्ट्र ने विदुर जी को भेज, युधिष्ठिर को जुआ खेलनेके लिये बुलाया, तब विदुर जी युधिष्ठिर को लेने गये। वहां जाकर युधिष्ठिर को बोले कि धर्मराज आपको धृतराष्ट्र ने जुआ खेलने बुलाया है। इस पर युधिष्ठिर को भी विचार हुआ और उनने विदुर जी से भी राय ली। तब विदुर जी ने युधिष्ठिर को उसका सार समझा उपदेश दिया कि राजन्! समझलो कि जुआ खेलना अनर्थ का मूल है। इस क्रीडा का परिणाम बड़ा बुरा होगा। मैं तुम्हें अपनी राय नहीं देता हूं कि तुम चलो। पर मैं धृतराष्ट्र का भेजा हुआ आपके पास बुलाने आया हूं। अब आप अपना कल्याण हो वैसे कीजिये। मैंने तुम्हें इसका तत्वोपदेश कर दिया, आगे आप सोच समझ के काम करें। इस प्रकार विदुर के मधुर और सुखद उपदेश को भी होनहार वश न मानते हुये विद्वान्

(जानकार) युधिष्ठिर भी दुर्योधन से जुआ खेलने चले आये। इसका परिणाम यही हुआ, जो युधिष्ठिर को अनेक विपत्तियां भोगनी पड़ीं।

[यह कथा महाभारत के सभापर्व में ५८ वें अध्याय में है।]

इस लिये बुद्धिमानों को चाहिये कि वे अपने हित चाहने वालों की बात पर ध्यान दें और उसके अनुसार ही बर्ताव करें।

मरा हुआ मूषक ले उधार में,
सुयुक्तियों से बहु वित्त को कमा।
वाणिज्य से मूषक होगया धनी,
व्यापार को कौशल से बढ़ाइये॥ ८९

एक वैश्य का पुत्र मूषक नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका पिता उसे गर्भावस्था में ही छोड़ परलोक वासी होगया था। माता के पास जो धन था उसे कुटुम्बियों ने अनेक प्रकार के बहाने कर छीन लिया। निर्धन होने के बाद उसे वे कष्ट देने लगे। तब वह बेचारी उसके पति के मित्र यज्ञदत्त के घर में जा रहने लगी। वहां ही उसके गर्भ से पुत्र हुआ। धीरे धीरे १० वर्ष का होने के पीछे उसे कुछ पढ़ाया लिखाया। तब उसे लिखना पढ़ना ठीक आगया, तब वह उसे समझदार बुद्धिमान

जान कर बोली कि बेटा तुम बनिये के पुत्र हो, तुम्हें व्यापार करके कमाई करनी चाहिये। कमाकर खाना ही सपूतों का काम है। इस समय वह १५ वर्ष का होगया था। तब उसने पूछा मा! व्यापार कैसे करूं। व्यापार के लिये पहले कुछ धन की आवश्यकता है, वह होतो करूं। तब उसकी माता ने यह उपाय बताया कि यहां पर एक विशाखिल नाम का सेठ बड़ा धनवान है। वह उधार धन देता है उसके पास जाकर धन लाओ फिर व्यापार कर उसे बढाओ। यह सुन वह विशाखिल के पास गया तब वह विशाखिल किसी पुरुष को यों धमका रहा था कि तू क्या व्यापार करेगा। तूने तो मूल की भी रक्षा नहीं की। फिर लेने आया है। देख यह मरा हुआ चूहा जो आंगन में पड़ा है चतुर पुरुष तो इससे भी धनी हो सकता है, तुझे तो मैंने २००) मुहरें दी थीं, तूने उनसे भी कुछ न किया और उन्हें भी नष्ट करदीं। यह मूपक उस विशाखिल की सब बातें सुन रहा था। इसको उसकी बातका बड़ा असर हुआ और इसने वह मरा चूहा देखकर उठा लिया और विशाखिल से कहा कि सेठजी! यह मरा हुआ चूहा मुझे उधार दे दो। मेरे नाम खाता लिखलो! विशाखिल यह सुन हंसा और बोला मैंने इस आदमी को समझाया है। तुम तुम्हें चाहिये सो और लेलो। तब वह न मानकर चूहा ही ले आया। रास्ते में आता हुआ ही किसी की बिल्ली के लिये २ अंजली चने ले उस चूहे को बेच आया। दोनों हाथों की २ अंजलियों में १ सेर से अधिक चने आये। उन्हें भाड़ में भुनाकर एक पानी का घड़ा ले, नगर के बाहर जहाँ गांवों के राहगीरों की आमद थी, चौराहे पर एक वट वृक्ष देख उसके नीचे बैठ गया। लकड़हारे उधर होकर लकड़ियां बेचने को आते थे। धूप का समय देख वहां विश्राम करने पर पानी न

होने से तकलीफ पाते थे। वह उन्हें पानी पिलाता और चने की एक मुट्ठी देदेता। वे इस पर राजी हो वहीं ठहरने लगे और इसके लिये दो दो लकड़ी की लड़ बांधदी। नित्य दो २ लकड़ी हरेक लकड़हारा पटक जाता। इससे उनके पास बहुत लकड़ियां होगईं। तब उन्हें बेचता और चने लेकर भुनाकर पैसे ही दो महीना धिनाये। कुछ दिनों में उस वर्ष इतनी वर्षा हुई कि काठ बहुत मंहगा होगया। उसने उस समय तक ईंधन की राशियां इकट्ठी करली थीं। उनको उस मंहगाई में बेचकर बहुत धन कमा व्यापार की दूकानें खोल कम से कम दो चार वर्ष में ऐसा धनाढ्य होगया कि एक सुवर्ण का चूहा बना उस विशाखिल को देने गया। उसकी इस बुद्धिमानी को देख विशाखिल सेठ बहुत राजी हुआ और अपनी लड़की इसे ब्याह दी। फिर वह मूषक नाम से ही प्रसिद्ध होगया।

[यह कथा, कथा सरित्सागर में है।]

इस कथा पर ध्यान देना ही चाहिये कि उस साहसी व्यापारी ने क्या आश्चर्य मयी बुद्धि से व्यापार कर धन कमाया है। इसी प्रकार चातुर्य से व्यापारियों को व्यापार बढ़ाने में प्रयत्न करना चाहिये।

निहार के आप समान वेशवान्,
मिथ्या स्वरूपी खल वासुदेव को ॥

श्रीकृष्ण ने मार दिया तुरन्त ही,
कभी बड़ों की नकलें नहीं करो ॥९०

करूप देश का राजा पौंड्रक था। उसको लालची व अज्ञानी लोग राजी करने को यह कह दिया करते थे कि महाराजा हमारे तो आप ही वासुदेव हो। वह मन्द बुद्धि उनके कहने से अपने को वासुदेव ही मानने लगा। और शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म बना कर धारण करने लगा। सारांश यह है कि कृष्ण का भेष धारण किये वह रहता और अपने को विष्णु का अवतार मानता। घमण्ड में आकर एक दिन भगवान् के पास दूत भेज कर कहलाया कि सचमुच वासुदेव मैं हूं, मैं ही दीनों पर दया करने को अवतार ले प्रगट हुआ हूं। तू मेरे इन शङ्ख, चक्र, गदा पद्म, को धारण करना छोड़दे। मेरे शरण आजा और ये मेरे चिह्न हैं, इन्हें धारण करना छोड़दे। नहीं तो युद्ध कर। यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र और सभा में बैठे हुये उग्रसेन आदि सभ्य लोग बहुत हँसे। पीछे श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया कि दूत! तुम उसे कह दो कि जिन चिह्नों को तू अपने बताता है, उन चिह्नों को मैं तुझ पर चलाता हूं। तू उन्हीं चिह्नों से कटकर श्वान गीध आदि जन्तुओं से खाया जायगा। संग्राम के लिये तैयार हो। यह सुन दूत ने जाकर पौण्ड्रक (मिथ्या वासुदेव) को भड़काया। इधर भगवान् श्री कृष्णचन्द्र भी उस पर चढ़ाई कर लड़ने चले गये। उधर से वह घमण्डी मिथ्या वासुदेव भी कृष्ण से लड़ने आया। साथ में उसका मित्र काशिराज भी सहायता के लिये आया। भगवान् ने संग्राम कर उसे सहज ही मार गिराया। मारते समय उसका मान भी (जो वासुदेव

बनने का था) मर्दन कर कहा कि ये तेरे चिह्न (जिन्हें तूने छोड़ देने को कहलाया था) आज तुझे इस रण भूमि में काटते हैं, इत्यादि ।

[यह कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में ६६ वें अध्याय में है ।]

इस कारण ऐसे समर्थ पुरुषों की नकल पर घमन्ड में भर उन्हें अपमानित न करो। क्योंकि वह बनावट बिगड़ जाने पर बहुत अपकीर्ति और मरण ही फल होता है ।

तपस्विता में धनु और बाण से,
श्री राघवों को पहचान, वीर ने ।
सुग्रीव को निर्भय ही बना दिया,
आकार से भाव तुरन्त जानिये ॥ ९१ ॥

ऋष्यमूक पर्वत पर रह हुये सुग्रीव ने सीता की खोज के लिये जङ्गल में घूमते हुये राम और लक्ष्मण को दूर से देखा, परन्तु नहीं पहचान सका। वह बालि की शंका कर डर गया और हनुमान को बोला कि मारुते ! जरा इन की तलाश कर आओ, यह कौन हैं ? इन के डोल डौल से तो ये कोई महाप्रतापी जान पड़ते हैं, पर इस प्रकार से जाओ कि इन्हें मालूम न हो सके। यह सुन हनुमान ब्रह्मचारी का भेष बना कर पर्वत से

उतर कर समीप आये और इन्हें देखा तो तरकस बांधे हुये, तीर हाथ में लिये, जटा शिर पर और तेज के मण्डल से व्याप्त हुये दोनों बली धीर प्रचंड पराक्रमी मालूम हुये । इन्हें पहचान ज्ञान से; युक्ति से सब बात पूछली और अपना भी परिचय दे दिया। फिर हनुमान ने इन का सब हाल जान इन्हें पहचान लिया कि ये महा प्रभु के अवतार हैं। भूमि के भार हरण करने आये हैं। इन की मित्रता सुग्रीव से करा देना चाहिये। ये दोनों सुग्रीव का दुःख दूर कर सकते हैं और वह इन की सीता गवेषण में सहायता कर सकेगा। यह सोच राम और लक्ष्मण को सुग्रीव का परिचय दिया और इन को ऋष्यमूक पर्वत पर ले जा कर सुग्रीव के मित्र बना दिये। श्री राघव ने सुग्रीव की विपत्ति दूर कर दी।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के किष्किंधा काण्ड में है।]

इस से मनुष्य को यह सिखाया हैं कि बुद्धिमान पुरुष को दूसरे के आकार देख कर उसके मन के भाव को पहिचानना चाहिये। बिना उस के भाव को पहिचाने यदि उस से कुछ लाभ या काम करना चाहो तो सफलता नहीं पा सकोगे। इस कारण आकार से भाव पहिचान कर व्यवहार करना उचित है।

अनेक पाखन्ड दिखा मुकुन्द को,
विमोह के हेतु नृपाल शाल्व ने।

विनाश पाया पुर साथ शीघ्र ही,
मायावियों से मत धूर्तता करो ॥ ९२

जब भगवान् श्री कृष्णचन्द्र राजसूय यज्ञ को निपटा कर युधिष्ठिर से विदा हो, द्वारिका को आये, तब देखा कि द्वारिका में शाल्व राजा ने (सोमपुर को माया से बना उसको साथ रखता था। यह एक विमान था इसमें ही वह अपनी सेनादि आवश्यक प्रजा को भी रखता था) बहुत उपद्रव मचा रखा है। यह देख श्री कृष्ण उससे युद्ध करने को तैयार हुये। रण में शाल्व को माया का इतना घमण्ड था कि उसने यह नहीं पहचाना कि मैं जिससे लड़ता हूं, उसी की बनाई हुई यह माया है कि जिसके आसरे से इतना चमत्कार जानता हूं। वह तो मदान्ध हो कर कृष्ण के साथ विचित्र युद्ध करने लगा। भगवान के ऊपर उसने बहुत शस्त्र एक ही दम बरसाये और वह उस पुर को लिये हुये आकाश में उड़ गया। ऊपर से प्रचंड शस्त्र भगवान पर वर्षाये, तब भगवान ने दिव्यास्त्र के प्रयोग से उसकी सब माया को नष्ट कर दिया और क्रोध धार कर भगवान ने भी प्रबल पराक्रम के साथ उस सौम विमान पुर को विनष्ट कर गिरा दिया। फिर उसके शिर को काट दिया। इस प्रकार शाल्व का वध कर द्वारिका वासियों का कष्ट छुड़ाया। द्वारिका वासियों ने भगवान की जय २ कार की।

[यह कथा महाभारत के वनपर्व के अर्जुनाभिगमन पर्व में है। और भागवत के दशमस्कन्ध में भी है]

मायावियों के साथ माया पार नहीं पड़ सकती है। इस

बात को ध्यान में रख कर जो जिसको जानने वाला हो, उस बात में उसके साथ चालाकी नहीं करनी चाहिये। ऐसा करने से वह विशेष जानने वाला हो, थोड़े चालाक की चालाकी बिलकुल बिगाड़ देता है।

गौ ब्राह्मणों के अपराध में लगे,
हिंसा विहारी खल क्रूर कंस को।
मारा सभा में शिर काट, कृष्ण ने,
अवश्य दो दण्ड नितान्त दुष्ट को॥ ९२

मथुरा का राजा कंस महा दुष्ट था, वह मलिन अंतःकरण का था और अपने समान किसी को न समझता था, धर्म का पूरा द्वेषी था। जब से उसने यशोदा के गर्भ से हुई (माया को) देवकी की लड़की जान, उसे पछाड़ना चाहा कि वह आकाश मार्ग में से उससे यह कह गई, कि तेरा घाती पैदा हो गया, व्रज में है। तब से तो वह महा पापी हो गया था। मंत्रियों से सलाह कर वह अपने देश के वासी ब्राह्मण, ऋषि, साधु, भक्त, गौ आदि निरपराध और भगवान के प्यारों को प्राण दंड देने लगा और उसने यज्ञ, तप, दान, गौ, ब्राह्मण, सत्य, श्रद्धा, दया आदि सत्कर्मों को भगवान का प्रिय जान नष्ट करना आरम्भ कर दिया। यह काल पाश में बंधा हुआ ब्रह्म हिंसा को ही अपना हित समझने लगा। इतनी दुष्टता करने लगा तब कितने

ही लोग भाग गये, कितने ही डर कर शरण पड गये, कितने ही मर गये इसी धर्म नाश को होते देख, भगवान ने उसकी बुद्धि को योग माया से ऐसी पलटी कि उसने धनुष यज्ञ रच कर कृष्ण बलिराम को मरवा डालने की इच्छा से वहां बुला लिया। भगवान ने पहले बचपन में ही उस कंस के भेजे हुये अम्ब के तोर और भयङ्कर दानवों को मार गिराया था और वे चाहते थे कि समय पर उसे भी मार गिराऊँगा। यह कंस इनका खास मामा होता था तथापि धर्म द्वेषी को भगवान नहीं सहते हैं, चाहे वह कोई हो। कंस के बुलाने से कृष्णचन्द्र बलराम को साथ ले मथुरा गये और वहां धनुष यज्ञ में उस कंस को सब राजाओं के देखते २ पछाड दिया और सिर काट कर मार दिया। भगवान का यह स्वभाव ही है कि गौ, ब्राह्मण को कष्ट देने वाले और धर्म के द्वेषी को वे अपना शत्रु समझते हैं इस लिये भगवत्-भक्तों को यह चाहिये कि जो भगवान का प्रिय रहना चाहे तो गौ और ब्राह्मणों का पालन ही करे उनका बिगाड न करे, अन्यथा वह भक्ति भगवान के द्वेष ही में परिणत होगी।

[कंस वध की कथा भागवत में प्रसिद्ध है। १० वें स्कन्ध में विस्तार से वर्णन की है]

लगा महा अग्नि कपीन्द्र पूँछ में,
भोगी महा रावण ने बुरी दशा।

लंका जली नष्ट हुई बहु प्रजा, अदण्डय जो हैं उनको न दण्ड दो ॥ ६४

जब हनुमान सीता की खोज के लिये लंका में गये और वहां सीता का पता लगा कर रावण से मिलना हो जावे-इस बुद्धि से वन भंग कर अक्षकुमार को और सेनापति आदि को युद्ध में मार इन्द्रजीत के साथ संग्राम कर ब्रह्म पाश मे बँध गये, तब वह इन्हें पकड़ कर रावण के निकट ले गया। रावण से इनकी बातचीत हुई। हनूमान ने रावण को समझाया, पर उसने न माना। तब हनूमान ने रावण को वाणी से फटकारा। इसमें रावण इनके बल विक्रम और तेज पर नाराज हो कर डाह कर इन्हें मरवा देने की आज्ञा देने लगा। तब विभीषण ने रावण को नीति और धर्म शास्त्र से समझाया कि दूत का वध कहीं नहीं लिखा है। तुम विद्वान हो, शूरवीर हो। यह दूत आया है, इसलिये इसका वध करने की आज्ञा न दो। तब रावण ने क्रुद्ध हो कर इसकी पूछ में आग लगा देने की आज्ञा दी। राक्षसों ने झट ही हनुमान की पूंछ पर सन, रुई, वस्त्रादि लपेट तेल डाल अग्नि में उसे जला दिया। मारुती ने भी यह लीला देख विचारा कि इसने अनीति की है कि अदंड्य (दूत को) दंड दिया है, तो मैं अब कमी क्यों रखूँ। इन घरों से इस अग्नि देव का तर्पण तो कर दूं। यह सोच उस बन्धन में से सूक्ष्म रूप कर निकल ऊँचे मकानों पर जा चढ़े और लङ्का को जलाने लगे। एक एक कर के हनुमान ने सब घरों पर आग लगा दी। प्रजा बहुत नष्ट हो गई। रावण यह देख अत्यन्त कुपित हुआ, पर इस प्रचंड अग्नि के सम्मुख वह हक्का बक्का हो गया। हाथ मींजने के सिवाय कुछ न कर

सका। हनुमान भी लङ्का जला कर समुद्र में कूद, अग्नि को शान्त कर सीता से फिर मिल, उसे सान्त्वना दे राम के पास लौट आये।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के सुन्दर काण्ड में है।]

इस का भावार्थ स्पष्ट ही है कि जो दण्ड देने योग्य हो उसे ही दण्ड देना चाहिये। इस से विरुद्ध करने में महान् उपद्रव हो जाता है। इसलिये न्याय कर्मचारी लोग बहुत विचार के साथ दण्ड नियत करते हैं। तुम भी किसी को विना समझे कुछ ताडना मत दो।

बलाभिमानी अति दुष्ट शाल्व को;
श्रीकृष्ण निन्दा करता निहार के।
प्रद्युम्न ने मार भगा दिया अहो,
सुनो न निन्दा गुरु तात मात की।९५।

जब शिशुपाल श्री कृष्ण के हाथ से मारा गया तब उस शिशुपाल का भाई शाल्व सौम नगर में (यह एक विमान था इस का परिचय पहले दिया जा चुका है) बैठ लडने के लिये द्वारिका पर चढ आया। उस समय श्री कृष्ण पाण्डवों के यहाँ थे। शाल्व इस मौके पर सूनी द्वारिका देख उस में

उपद्रव मचाने लगा और प्रजा को महा दुःख देने लगा। सौम नगर में बैठा हुआ वह आकाशचारी होकर कई उत्पात कर ने लगा और श्री कृष्ण की निन्दा कर ने लगा कि दुष्ट श्री कृष्ण मेरे भाई शिशुपाल को संग्राम में तो न मार सका और धोखे से राजसूय में मार डाला। उस नीच कृष्ण को मैं आज यम- पुर पहुंचाऊंगा। पाप कर्मी तुच्छता का बर्ताव करने वाले विश्वास घाती उस कृष्ण को मैं मारे विना नहीं रहूंगा। इत्यादि बहुत क्रूर शब्दों से कृष्ण भगवान् की निन्दा करने लगा। तब प्रद्युम्न (श्री कृष्ण के पुत्र) से यह निन्दा न सुनी गई और वह क्रोध कर कवच पहन प्रजा को समझा कर शाल्व से संग्राम कर ने चढ गया। महा बली प्रद्युम्न ने उसे संग्राम में ऐसा अद्भुत पराक्रम कर दिखाया कि जिसे देख देवता भी आश्चर्य करने लगे। शाल्व के मायावी होने पर भी उसे पिता की निन्दा करने के कारण प्रचण्ड पराक्रम से पराजित कर प्रद्युम्न ने संग्राम से भगा दिया।

[इस की कथा वनपर्व के अर्जुनाभिगमन पर्व में है।]

इस कारण मान प्रिय पुरुष गुरु, भक्त व माता पिता के असली वीर्य होने का मान रख ने वाले गुरु पिता और स्वामी की निन्दा नहीं सुनते हैं।

राजा महा कौशल देश का प्रभु, श्रीराम वा लक्ष्मण आदि पुत्रवान्।

मरा पड़ा ही तिल तैल में रहा,
विचित्र ही है गति दैव की सखे ॥६६॥

श्रीमान कौशल देश का महाराजा, और सब प्रकार समर्थ, जिस के श्री रामचन्द्र और लक्ष्मण तथा भरत शत्रुघ्न (विष्णु के चतुर्व्यूह अवतार) पुत्र थे। वैसे भी महा पुरुष मरने के समय कोई पुत्र की स्थिति समीप न होने के कारण तेल में पड़े रहे। इस बात से यही कहना पड़ता है और अवश्य मानना पड़ता है कि दैवगति विचित्र होती है—इसमें संदेह नहीं। जब श्रीरामचन्द्र और सीता तथा लक्ष्मण वन को चले गये थे और उन के वियोग दुःख से व्याकुल हुये दशरथ महाराज मर गये; तब उनके पास उन की अन्त क्रिया करने के लिये कोई पुत्र नहीं था; क्यों कि भरत शत्रुघ्न को उनके मामा युधाजित कुछ दिन पहिले ही अपने यहां केकयदेश (ननिहाल) में ले गये थे। इस कारण किसी पुत्र की सत्ता बिना वशिष्ठ मुनि ने मन्त्रियों से कह कर दशरथ की लाश को तेल के कढ़ाह में रखदी। इस अभिप्राय से कि वह सड़े गले सूखे नहीं और न उस में जीवादि ही पड़ें। फिर भरत को दूत भेज कर बुलाया और भरत के आने के पीछे राजा दशरथ के दाहादि संस्कार हुये।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के अयोध्याकाण्ड के ६६ वें सर्ग में है।]

इस का सार यही समझना चाहिये कि दैवगति विचित्र है और अपने अधीन नहीं है। यह समझ कर अभिमान रहित शान्ति के साथ धर्म के अनुसार निर्वाह करते रहना और किसी भी बात के मद-प्रमाद आदि में नहीं फंसना चाहिये। न

जाने क्या हो। दैवाधीन विषय को कौन सोच सकता है? इसका प्रबन्ध पहले नहीं हो सकता है।

अछेड था जो अति दीर्घकाल से,
उजाड़ वैसे मधु बाग का सुन।
हुआ नहीं क्रुद्ध कपीश सैन्य पै,
देखें गुणग्राहक दोष को नहीं ॥९७॥

किष्किंधा प्रांत में वालि का एक मधुवन नाम का बड़ा बाग था। बहुत वर्षों से वह छेड़ा न गया था। उसकी रक्षा के लिये सुग्रीव का मामा नियत था। उस बाग में मधुसा के वृक्ष बहुत थे, जिन वृक्षों में आसव (वृक्षों का मद) भरा ही करता था। बहुत काल तक न छेड़ने से उस बाग में मधु के छाते के छाते हर एक वृक्ष के नीचे से ऊपर तक जम गये थे; नवीन झरनों की तो बात ही क्या थी। इस बाग पर सुग्रीव की ममता बहुत थी। यह बाग वानरेन्द्र को इतना प्यारा था कि इसके मधु व फल खाने की व तोड़ने की किसी को भी इजाज़त नहीं थी। ऐसे प्रिय बाग को जब हनुमान लंका से सीता की खबर लेकर वापिस आये, तब खुशी में अङ्गद से वानरों ने आते हुए इस बाग के मधुपान करने की इच्छा प्रकट की, तब हनुमान ने सब वानरों को आज्ञा दी कि मधुवन में चलो और मधुपान करो, फल आदि खाओ। यह सुन अङ्गद ने भी यही कहा, बस फिर क्या था, वानर सेनाने मधुवनमें प्रवेश कर आनन्द

आरम्भ किया। मधु पीने लगे, फल खाने लगे, प्रसन्न हो क्रीड़ा करने लगे। नशे में ऊधम मचाने लगे। अकस्मात् मधुवन को उजड़ता देख दधिमुख ने इन्हें रोका और धमकाया तो अङ्गद ने एक पछाड़ दे ठीक कर दिया। वह मुख से रुधिर बहाता हुआ, सुग्रीव के पास जाकर पुकारा। सुग्रीव ने उसकी बात सुन सब बात समझली कि हनुमान सीता की खबर लेकर आये – इसमें सन्देह नहीं। यदि वे कार्य सफल कर नहीं आते, तो मेरे मधुवन को न छेड़ते। यह सोच दधिमुख को समझाया कि तुम जाओ, बाग का मधु खा ही गये तो कुछ डर नहीं, वे दुष्कर काम को सफल कर के आये हैं। मैं उन पर प्रसन्न हूं, खाने दो। और तुम्हें जो ताड़ना मिली उसे तुम भी सह लो और कृतकार्य उन वानरों को हनुमान के साथ जल्दी भेजो, इत्यादि।

[यह कथा वाल्मीकि रामायण के सुन्दरकाण्ड के ६१—६२—६३ सर्गों में है।]

सच है कि गुण ग्राहक पुरुषों के दोष नहीं देखना चाहिये। अपने कार्य की सफलता होने के साथ यदि साधारण छोटा दोष भी हो जावे, तो उस पर विचार नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से वह कार्य कर्त्ता उत्साहित रहता है, और अन्य समय वैसे ही कार्य करने को तैयार रहता है।

विभ्रान्त दुर्योधन की बुरी दशा,
निहार भीमादि हँसे प्रसन्न हो।

वहां महा भारत—बीज होगया,
प्रहास को क्लेश-निदान जानिये।६८।

महाराजा युधिष्टिर ने सभा भवन ऐसा विचित्र और अनोखा मन मोहन बनाया था, कि उसे देख २ सब राजा लोग चकित हो गये थे। राजसूय में आया हुआ दुर्योधन भी पांडवों की अतुल सम्पत्ति को देख मन ही मन में जल उठा। वहां रहता हुआ दुर्योधन एक दिन उस सभा का निरीक्षण कर रहा था, कि इधर उधर देखता हुआ स्फटिक मणियों से जड़े आंगन को जल समझ कपड़े ऊंचे कर जाने लगा और जब उसे पैर रखने से मालूम हुआ कि यह तो स्फटिक है, तो वह बड़ा लज्जित हुआ। इसी प्रकार एक निर्मल जल से भरी स्फटिक मणियों से जड़ित बावड़ी को केवल स्फटिक ही समझ बे खटके चलता हुआ बावड़ी में गिर गया। तब तो इसके भ्रम को देख भीमसेन हंसे और नौकर आदि भी दुर्योधन की हँसी करने लगे। फिर युधिष्टिर की आज्ञा से उन नौकरों ने इस दुर्योधन को दूसरे अमूल्य और बढ़िया वस्त्र लाकर पहराये। इससे इसका मद बिलकुल नष्ट हो गया था, परन्तु उस समय तो दुर्योधन ने अपने आकार को छुपा कर कुछ भी नहीं कहा सुना—उन भीमादि की तरफ ऊंची दृष्टि कर के देखा भी तो नहीं। आगे चल कर फिर वैसे ही धोखे में पड़ गया। कपड़े ऊंचे कर जाने लगा, तब फिर वे-अर्जुन, नकुल, भीम, सहदेवादि सब हँसे। और भी आगे जाकर यह एक स्फटिक मणि की भीत देख उसे द्वार समझ कर घुसने लगा कि जोर से ललाट पर ऐसी टक्कर

लगी जो सिर घूम गया, चक्कर सा खाकर बैठ गया। इसके ऐसे भ्रम पर भीम, अर्जुन आदि हँसे। बस, वह हँसी इसके कलेजे में बुरा असर कर बैठी। वहां से दुर्योधन चल कर युधिष्ठिर से आज्ञा ले अपने घर गया और शकुनि को अपने मन का दुःख सुनाने लगा, कि इन भीमादिक ने मुझे वहम में पड़ा जान बुरा उपहास किया है। इस कारण जब तक मैं इनकी सम्पदा न छीन लूं और इन्हें न मारूं, तब तक मैं जीवित नहीं मृतक सा हूं। यही बात धृतराष्ट्र को कही। उसी दिन से दुर्योधन के हृदय में पांडवों का द्वेष-रूप वृक्ष खड़ा हो गया था।

[इसकी कथा महाभारत के सभापर्व के ४७ वें अध्याय में है।]

इस कारण किसी का उपहास न करो। इस कहावत को सच समझो "हँसी लड़ाई का घर है।"

दशास्य का पुत्र निकुम्भिलास्थ हो,
श्रीराम पै मारण मन्त्र साधता।
मारा गया लक्ष्मण के सुवाण से,
न ईश्वरों पै अभिचार कीजिये॥ ६९॥

रावण का पुत्र इन्द्रजित लक्ष्मण के साथ युद्ध करता हुआ लक्ष्मण को पराजित न कर सका, तब निकुम्भिला (जो

एक मन्त्र साधन का स्थान था) में जाकर राम और लक्ष्मण पर अभिचार करने के लिये हवन कर मन्त्र साधन करने लगा। वहां ही एक वड़ का वृक्ष था, उसके नीचे आकर वह इन्द्रजित अदृश्य होजाया करता था। इसके इस समाचार को विभीषण ने जल्दी से जाकर रामचन्द्रजी को कह सुनाया और यह भी कहा कि यदि उसका वह मन्त्र-जप पूर्ण हो जायगा, तो फिर वह अजय ही हो जायगा, इस कारण मुझे लक्ष्मण को साथ दो, जिससे मैं और लक्ष्मण दोनों जावें और उसको जप करने से विघ्न कर उठावें तथा लड़कर मार भी दें। रामचन्द्र ने लक्ष्मण को भेजा। विभीषण और लक्ष्मण, हनूमान आदि प्रसिद्ध वानर गण सब जाकर उस जप में विघ्न करने लगे। हनुमान ने उसे बहुत कुछ तिरष्कार के वचन कह कर युद्ध के लिये उठा लिया। फिर लक्ष्मण के साथ उसका घोर युद्ध हुआ, अन्त में लक्ष्मण के वाण से वह मर गया।

तात्पर्य यह है कि उसके अभिचारक कर्म में अपूर्णता होने के कारण उसी को मरना पड़ा, क्यों कि ये मारणादिक क्रूर कर्म जिन पर किये जांय, उन पर पुण्य या तपस्या अधिक होने से न चल सकते हैं तब करने वाले पर उनका असर होता है। इस कारण सामर्थ्यवान् पुरुषों पर ऐसे कर्म (मारण आदि) न करो।

[यह इन्द्रजित के निकुंभिला में हवन करने की कथा वाल्मीकि रामायण के युद्ध काण्ड में है।]

सुरेश की तीक्ष्ण अमोघ शक्ति से,
मरे हुए भी सुत को निहार के।
हुए नहीं शोक अधीन पाण्डव,
कभी न चिंता गत वस्तु की करो ।।१००।।

महा भारत के संग्राम में जब घटोत्कच और कर्ण की लड़ाई हुई थी, घटोत्कच ने भयङ्कर पराक्रम किया था और अपने अतुल बल से बड़े २ महारथियों को चकित किया। अनेक सैनिकों को उसने लीला से ही मार डाला और मायावी अलायुध को घटोत्कच ने ही मारा। लड़ाई दिन को होती थी, परन्तु घटोत्कच का रण रात्रि को हुआ। उस समय यह कर्ण के वश का न हुआ और कर्ण को अपनी माया दिखाकर हक्का बक्का बना दिया। अनेक कौरव दांतों में जीभ देते थे, और इसके पराक्रम पर अचम्भा कर डरते थे। यह बात देख कर्ण ने इस घटोत्कच पर आग्नेयास्त्र छोड़ा, उससे भी इस पर सफलता न पाई तब कौरवों ने कर्ण से कहा कि वीर कर्ण! इस समय वह इन्द्र की दी हुई अमोघ शक्ति क्यों नहीं काम में लेते हो? यदि उपेक्षा करोगे तो यह तुम्हारे प्राण ले लेगा। यह बात सुन कर्ण ने भी उस इन्द्र की दी हुई शक्ति को ज़ोर से घटोत्कच पर छोड़ दी। उसके प्रहार से घटोत्कच मर्मस्थल में घायल हो ज़मीन पर गिर पड़ा और मर गया। इसको मरा हुआ देख अर्जुन युधिष्ठिरादि पाण्डव शोक करने लगे कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अत्यन्त प्रसन्न हो हर्षनाद किया, और अर्जुन को समझाया कि शोक मत करो। यदि इस कर्ण

की शक्ति को मैं इस प्रकार काम में लिवाकर ध्वस्त न करा देता, तो यह शक्ति तुम्हारे प्राणों से ही सफलता प्राप्त करती। अब उस शक्ति के न होने से कर्ण को तुम सर्वथा तुम्हारे हाथ से वध्य ही समझो। कर्ण की वह शक्ति होते हुये अर्जुन! तुम्हारा गाण्डीव और मेरा चक्र भी काम नहीं देता। इस कारण हर्ष का समय है, शोक का नहीं। वह पुत्र जो मरगया कुछ डर नहीं, वह तो स्वर्ग में पहुंचा। इस प्रकार मरे हुये वीर-गति में गये का क्या शोक करना, इत्यादि। श्रीकृष्ण की बात सुन अर्जुन तुरन्त ही प्रसन्न हो कर्ण का वध करने को युद्ध में गया और शोक के अधीन नहीं हुआ, न युधिष्ठिर आदि और पाण्डवों ने इसका शोक किया।

[यह कथा द्रोण पर्व के रात्रि युद्ध में है।]

इसका सारार्थ यह हुआ कि गई हुई वस्तु की विशेष चिन्ता कर समय नष्ट करना और उद्योग करने की अपेक्षा व्यर्थ है।

स्वकान्त के साथ विहार में लगी।
अज--प्रिया का मृदु पुष्प माल के--
निपात से जीवन नष्ट होगया,
भावी किसी से टलता नहीं सखे! ॥१०१॥

महाराज अज रघु के पुत्र थे। विदर्भ देश के राजा भोज की लड़की इन्दुमती इनकी पत्नी हुई। यह रूपवती और लावण्य की निधान थी। उसने इनको स्वयम्वर में ही वर लिया था। अज को इन्दुमती पर बहुत प्रेम रहा। एक दिन यह राजा अपनी प्रिया इन्दुमती के साथ अपने नगर के बाहरी बाग में विहार करने गया। वहां कुछ काल आराम करके यह इन्दुमती राजा की गोद में शिर लगाये लेट रही थी कि आकाश में उस समय गोकर्ण तीर्थ पर महादेव की स्तुति करने को जाते हुये नारद की वीणा पर से दिव्य पुष्पों की (कल्पवृक्ष, मन्दार आदि पुष्पों की) माला वायु के झकोरे से गिर गई। वह माला सोती हुई इन्दुमती की छाती पर आ पड़ी। बस, विलास करती हुई इन्दुमती उसको अपने वृक्षःस्थल पर पड़ी देखते ही संसार से प्रयाण कर गई! राजा इस दशा को देख बहुत विस्मित हुआ और विलाप करता हुआ नगर में आया। तब वशिष्ठ महर्षि ने उस महाराजा को शोक से व्याकुल देख सब हाल पूंछकर ध्यान द्वारा इन्दुमती की इस आकस्मिक मृत्यु का विचार कर समझाया कि राजन्! वह यों ही भावी था। यह इन्दुमती एक अप्सरा थी। इसका नाम हरिणी था। एक तृण विन्दु नाम ऋषि ने कठिन तपस्या की थी। उसकी समाधि भेदन करने को परीक्षा करने को इन्द्र ने इसे भेजा था। तब उस मुनि के तप में विघ्न करती इसे देख मानुषी हो-यह शाप दिया। शाप से डर हरिणी ने क्षमा चाही और कहा कि महाराज! मैं तो पराधीन हूं, इन्द्र की भेजी हुई आई थी, मेरा अपराध नहीं है। इस कारण क्षमा कर इस शाप का अंत कीजिये। तब दयालु मुनि ने इसे यह कहा कि जब तू स्वर्गीय पुष्प को देख लेगी, उसी समय यह शाप पूर्ण हो जायगा-तू

अप्सरा हो जायगी। इसके अनुसार ही यह सब हुआ है।
इत्यादि, वशिष्ठ से वृतान्त सुन राजा प्रकृतिस्थ हुआ।

[यह कथा रघुवंश में कालिदास महा कवि ने अष्टम सर्ग में लिखी है।]

भावी प्रबल होता है और वह किसी प्रकार भी नहीं टलता है। इस बात को दृढ़ समझ कर पुरुषों को उद्योग तो करते रहना चाहिये, पर कर्म फल के लिये आग्रह नहीं करना चाहिये। यह इसका सार हुआ।

दयालु गौरी पति गौर देहवान।
त्रैलोक्य-रक्षा हित पी हलाहल ॥
रहे जगत्में स्थित नील कण्ठ हो।
विकार भी लोक हितार्थ भोगिये ॥ १०२

शिवजी का दया पूर्ण स्वभाव तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। इनके प्रसन्न होने में विशेष समय नहीं लगता है। एक बार देव और दानवों ने समुद्र मन्थन किया। तब समुद्र में से ज़हर (हलाहल) निकला। उसकी तीक्ष्ण ऊष्मा से देवता और दानव सभी जलने लगे। उस महा विष का वेग किसी से सहा न गया। उस हलाहल की विषैली हवा ने जगत् को मूर्छित करना आरम्भ कर दिया। इस दशा को देख सब मिल कर शिवजी के पास आये और विनय कर अपना दुःख निवेदन करने लगे।

महादेव जी को इनकी दुःख मय अवस्था देख झट ही करुणा आगई और इनने उस हलाहल को योग विद्या के प्रभाव से समेट कर पी लिया और गले ही में रख लिया। वह ज़हर इनके ऊपर कुछ भी असर न कर सका, सिर्फ़ महादेव के गले में उस ज़हर का रङ्ग छागया। इस प्रकार महेश्वर ने प्रचण्ड विष भी पीकर त्रिलोक की रक्षा की और देवों में इनका नाम नील कण्ठ प्रसिद्ध हुआ। शिवजी का देह बिलकुल शुभ्र (सफेद) है। उस पर यह विष का कालापन शोभा ही देता है, भद्दा नहीं दीख पड़ता है।

[यह कथा भागवत के अष्टम स्कन्ध में है, और और पुराणों में मिलती है।]

भावार्थ यह है कि लोकोपकार करने से अपना कुछ बिगाड़ भी हो तो उसे हर्ष से सहो। वह विकार तुम्हारी शोभा ही बढ़ावेगा, इसमें संदेह नहीं।

समुद्र के मन्थन से निकाल के।
दो वारुणी दैत्य समूह के लिए॥
सुधा पिलाई हरि ने सुरौघ को।
पदार्थ दो योग्य अयोग्य देख के॥ १०३

जब देवता और दानवों में एकता कराकर भगवान् ने समुद्र का मन्थन करवाया, तब उसमें से अनेक चीज़ें निकलीं

थी। उन में एक वारुणी (मदिरा) भी निकली और अन्त में सुधा (अमृत) भी निकली। परन्तु पहले वारुणी निकली। जब देवताओं को भी उस पर इच्छा हुई और दानव भी उसे लेने की उत्कण्ठा करने लगे, तब भगवान् ने युक्ति के द्वारा पहले उन्हें प्रसन्न किया, और कहा कि भाई प्रथम यह विशिष्ट पदार्थ प्राप्त हुआ है, इसे इन दैत्यों को देना चाहिये। तुम अभी ठहरो। इन ने परिश्रम भी वहुत किया और मन्दराचल लानेके लिये तुम्हें सहायता दी है। इत्यादि कहकर वारुणी को दानवों के लिये दे दिया। दानव वारुणी ले प्रसन्न होगये। पीछे सुधा निकली। तब उस पर देव-दानवों में विवाद होने लगा। तब वल से और हठ से दानवों ने सुधा छीन ली। तब भगवान् ने मोहिनी स्वरूप धारण कर दानवों को मोहित कर वह सुधा का पात्र ले लिया और दोनों को समझा बुझा कर पिलाने लगे। उस समय प्रथम देव पंक्ति और पीछे दानवों की पंक्ति विठा कर, पहले पहले देवताओं को खूब पिलाने लगे। इस प्रकार देवों की पंक्ति में ही उसे पूरा कर दिया और अपना रूप वदल अन्तर्ध्यान होगये। अब क्या था? देव सुधा पी अमर तो हो ही गये थे, फिर दानव लड़ते रहे और ये देव उन्हें मारते रहे। जब तब भगवान् भी उन्हें सहायता देते रहे, परंतु योग्य अयोग्य देखकर वस्तु विभाग कर गये।

[यह कथा भागवत के अष्टम स्कन्ध में है।]

इसका तात्पर्य यह है कि जो जिस वस्तु के योग्य हो, उसे वही वस्तु दो। अयोग्य को न दो, ऐसा करने के उस वस्तु का उपयोग नहीं होता है।

सोते हुए घोर नितान्त नींद में,
गई उडा ले अनिरुद्ध वीर को।
पलंग के संयुत चित्र लेखिका,
प्रगाढ निद्रावश हो न सोइये॥ १०४॥

बाणासुर की लड़की ऊषा बहुत सुन्दर और भुवन-मोहिनी थी। उसने यौवन अवस्था में एक दिन स्वप्न में अनिरुद्ध को देख, उन पर मुग्ध हो उनके साथ विहार करते अपने को देखा। प्रभात में जग जाने के पीछे प्रियतम को न देख वह बहुत व्याकुल हुई। उस दुःख से उसे चैन नहीं रहा। तब उसकी सहेली चित्ररेखा ने उससे सब हाल पूछ कर अनेक राजाओं के चित्र दिखाये, उनमें अनिरुद्ध का चित्र देख उसे छाती से लगा लिया, और चित्रलेखा से बोली कि बस यही है मेरा जीवनाधार। तू किसी भी प्रयत्न से इनके दर्शन करादे, नहीं तो मेरा जीवन रहना दुष्कर है। यह सुन चित्रलेखा उस अनिरुद्ध को पहचान योग मार्ग से द्वारिका में पहुंच कर, महल में सोते हुये अनिरुद्ध को पलंग सहित इस युक्ति से उठा लाई कि अनिरुद्ध को कुछ भी पता न चला। चित्रलेखा ने ऊषा को उसे ला दिखा दिया। ऊषा उसे देख बहुत प्रसन्न हुई, और उसने अनिरुद्ध के जग जाने पर उसे अपने स्वप्न का सब हाल कह कर प्रेम प्रार्थना कर: अपना पति उसे बना लिया, और उसके साथ जनाने के कन्यापुर में आराम विहार करने लगी। अनिरुद्ध को इस प्रकार के तहखाने के महलों में छुपा रखा था, कि कई दिनों तक

किसी को कुछ मालूम नहीं हुआ। पीछे एक दिन द्वारपालों ने राजा वाणासुर से उसका कुछ भेद कहा। तब उसने लड़ाई कर अनिरुद्ध को कैद कर दिया। इधर से भगवान् को मालूम हुआ, तब वहां सेना ले जाकर वाणासुर का पराभव कर ऊषा और अनिरुद्ध को ले आये।

[यह कथा भागवत के दशम स्कन्ध में प्रसिद्ध है।]

इसका यह सारांश समझना चाहिये कि गाढ़ी निद्रा वश होकर बिलकुल बे सुध नहीं होना चाहिये। सोते समय हृदय में अपने करने के कामों का ध्यान कर के या और कोई ऐसी युक्ति कर के सोना चाहिये कि ऐसा वैसा खटका भी हो तो तुरन्त चेत करलो।

अज्ञान से लेकर धेनु दी हुई,
द्विजाति को दे नृग नाम भूप ने।
सहे दुखों को कृकलास योनि पा,
दे दान को वापिस भूल भी न लो।१०५।

महाराजा नृग बड़े दानी हुए। वे अनेक प्रकार दान कर भोजन करते थे। यह उनका नित्य नियम था। एक दिन उन महाराजा ने कई धेनुओं का दान किया। उन दान की हुई गौओं में से एक गौ चरती फिरती वन में जाकर धेनु

समूह में मिल कर राजा की गोशाला में आगई । ग्वालों को इसका पता न चला और राजा को तो इसका ख़याल ही कैसे हो सकता है कि असंख्य गौओं में की यह धेनु अमुक है। इस कारण फिर दूसरे दिन राजा नृग गोदान करने लगा। तब वह गौ उपस्थित की गई, जो दी जा चुकी थी। राजा ने क्रम प्राप्त अनेक गौओं के साथ उसको भी संकल्प कर दान में दे दिया। दान में उस गौ को लेकर जाते हुए ब्राह्मण को मार्ग में उस ब्राह्मण ने रोका, जो पहले दिन गो दान ले गया था, और वह गौ चर कर उसके न पहुंच कर राजा के चली गई थी। दोनों में लड़ाई हुई कि यह गौ मेरी है। दूसरे ने कहा मैं अभी दान लेके आ रहा हूं, तेरी कहां से आ गई। अन्त में दोनों राजा के पास गये। राजा ने उनकी बातें सुन बहुत अचम्भा किया, और उन्हें समझाया तथा दूसरे को अनेक गौ देने को कहा तो भी उन दोनों ब्राह्मणों ने न माना और वे लड़ते क्लेश करते हुए गौओं को छोड़ कर चले गये, और गौ वहां रही, तथा उस दिन की रात्रि को ही राजा नृग की मृत्यु हो गई। इस धर्म क्लेश के कारण उसे धर्मराज ने सब हाल कह कर समझाया कि महाराज! पुण्य तो आपका अद्भुत ही है, परन्तु अन्त में गोदान के व्यत्यय से और ब्राह्मणों के कलह कर गौ न ले जाने से, तथा दी हुई गौ के आपके यहां रह जाने से कर्म विपाक के अनुसार आपको गिरगिट बनने की सजा प्राप्त होती है, उसे भोगो। राजा को गिर-गिट बनना पड़ा। फिर वहां जीवों को मार २ कर खाने से वह पाप बढ़ता ही गया। इस कारण बहुत दुःख उठाना पड़ा। फिर श्री कृष्णावतार में इसका उद्धार भगवान् के हाथों हुआ है।

[यह कथा भागवत दशम स्कन्ध में है और पद्मपुराण तथा ब्रह्म पुराण में भी मिलती है।]

इस कारण दिये हुये दान को भूल कर भी वापिस लेना तो दूर, मन को भी उस पर न जाने दो।

नृपाल दुर्योधन के समीप जो,
विना विचारे विषयुक्त अन्न खा।
हुआ महा दुःखित भीमसेन भी,
देखे विना भोजन कीजिये नहीं।१०६।

यह बात जगत् प्रसिद्ध है, कि भीम महा बल वाला था। इस के बचपन में ही इसे देख लोग बहुत आश्चर्य करते थे। जब यह कौरव बालकों (दुर्योधनादिकों) के साथ खेलता, तब सब को मनमाने खेल खिलाता, और जो इसके मन माफिक न खेलता तो उसे यह चोटी पकड़ मार पीट सीधा कर देता था। कोई भी बालक इस के सम्मुख खड़ा न होता था। कई बार दुर्योधन को ठोक पीट कर सीधा किया था। दौड़ने में और परिश्रम करने में यह सब से आगे रहता था। इस प्रकार भीम के बल पौरुष और तेज साहस को देख दुर्योधन इससे द्वेष करने लगा। और चाहे जब मौका मिलता, उसके मारने का उद्योग करता। एक दिन दुर्योधन

ने गङ्गा तीर पर एक बगीचे में डेरे तम्बू खड़े करवा कर वहां रसोइयों को कह अद्भुत २ पकवान बनाये और यह सोचकर पांचों पाण्डवों को बुलाया कि जब वे आवेंगे तब इन्हें जिमा देंगे। उसमें भीम के भोजन में कालकूट (विष) को मिला देंगे। वह खालेगा तब रात को इसे बांधकर गङ्गा में डाल देंगे। इसके अनुसार ही पाण्डव बुलाये गये। युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव वहां गये और दुर्योधन के साथ जल क्रीड़ा कर भोजन करने लगे। उस समय विष मिले हुये पक्वान्न मिठाई वगैरह को भीम खा गया। इसको इस घात का कोई पता न चला। इस कारण निर्भय हो इसने खूब डांट २ कर खाया। जल क्रीड़ा से थका था ही बस खाकर सोगया। वह ज़हर धीरे २ इसे बेहोश कर फैल गया। दुर्योधन ने रात को जब और पाण्डव सोगये, तब चुपचाप इस भीम को लताओं से बांध कर गङ्गा में डलवा दिया। सुबह पहले ही युधिष्ठिर को कहा कि भीम तो रात को ही गया। चलो अपन आप भी चलें, यों कह कर चले आये। इधर भीम अचेत और बंधा हुआ था, इस कारण पानी के तल में बैठ गया। वहां प्रभाह के वश किसी नाग के भवन पर जा टिका। वहां खेलते हुये नाग कुमार इसके नीचे दब गये और उनने इसे डस लिया। तब तो वह विष जो स्थावर था उन सर्पों के जंगम से उतर गया। तब भीम चेत में आकर नागों को देख आश्चर्य में आ पानी में उस नाग को कुचलने और मसलने तथा मारने लगा। नाग भागे हुये वासुकि के पास गये। वह आया तो यह आर्यक नागराज के दोहिते का दोहिता जाना गया। अर्थात् वह आर्यक कुन्ती के पिता का नाना था। फिर इसे प्रसन्न कर सब वृत्तान्त पूछ कर इस भीम से मिलकर प्रसन्न हुए वासुकि और आर्यक नागराज

ने इस भीम को दिव्य पय पिलाया, जिससे ६०००० हाथियों का बल होता है। भीम भी उस रस को पीकर सो गया। आठ दिन में जब वह पचगया तब उनसे विदा हो घर को लौट आया। इस प्रकार विना देखे भोजन करने से भीम ने कष्ट उठाये और वह तो होनहार वश बच ही आया और बलवान् होने के कारण तथा सर्पों के विष से उस विष से बचा, नहीं तो कुछ बाकी न रही थी।

[यह कथा महाभारत के १२६ वें अध्याय में है।]

इस कारण बिना देखे किसी के यहां भोजन करना अच्छा नहीं है।

महाबली भार्गव ने स्वतात को,
सन्तोष नाना विधि दे, मरी हुई—
मा को पुनर्जीवित भी बना दिया,
रहो लगाये मन मातृभक्ति में ॥

भार्गव (परशुराम) जमदग्नि ऋषि के पांच पुत्रों में छोटे पुत्र थे, परन्तु गुण में सब से अधिक थे। एक दिन इनकी माता रेणुका को, जो नदी में चित्ररथ को कमलों की माला पहने देख कामासक्त हो गई थी, इस बात में क्रुद्ध हो कर मार डालने के लिये ४ पुत्रों को जमदग्नि ने आज्ञा दी, पर उनने न माना। तब उनको शाप दे जड़ बना दिया। फिर परशुराम जी को कहा,

तब इनने यह सोचा कि माता से मेरा स्नेह: अधिक है, मैं इसे न मारूँगा तो ये पिताजी और कोई प्रकार मार देंगे; इस लिये इनकी आज्ञा पालन कर इस समय तो इसे थोड़ी देर के लिये मार दूं, पीछे इन महर्षि को प्रसन्न कर पुनर्जीवित करा लूंगा। इस उपाय के अतिरिक्त मात के जीवित रहने का कोई उपाय नहीं है। यह सोच पिता की आज्ञा पा कर रेणुका का शिर काट दिया। शिर काटते ही जमदग्नि प्रसन्न हो कर बोले, बेटा! मैं तुझ पर अतीव प्रसन्न हूं, तू जो चाहे वर मांग। तब परशु-राम जी ने यही वर मांगा कि पहिले मेरी माता को वैसे ही जीवित करो और इसके अपराध क्षमा करो और इस मेरी माता को यह ज्ञान न होवे कि इसने मुझे मारा था और मेरे भाई ज्यों के त्यों हो जावें तथा मुझे दीर्घायु मिले, मुझे संग्राम में कोई न जीत सके। यह वर जमदग्नि ने परशुराम को दे दिये। उसके अनुसार रेणुका तुरन्त ही मानों कोई सोती उठी हो, वैसे उठ खड़ी हुई और सब मनोकामना परशुराम के वर के माफिक पूर्ण हुई।

[यह कथा महाभारत के वन पर्व में ११६ वें अध्याय में है]

माता की भक्ति करना बहुत फलदायक होता है, इस कारण मातृ-भक्ति में मन लगाना सब सन्तानों का परम कर्तव्य है।

पीयूष का लाभ विचारते हुए,
निहार के दुष्कर सिन्धु-मन्थ को।
की एकता दानव-देव संघ ने,
रखो सभी मानव एकता सदा॥

देवता और दानवों में लड़ाइयां बहुत होती थीं। उनमें देवों को कभी हारना पड़ता और कभी दानवों को पराजित होना पड़ता था। एक बार दानवों से हार कर देव गण विचारे ब्रह्मा को साथ ले, क्षीर समुद्र पर जा भगवान की स्तुति करने लगे। वहां भगवान् प्रकट हो इन्हें समझाने लगे। सब प्रकार की वनस्पतियों को, ओषधियों को समुद्र में डाल कर किसी प्रकार उसका मथन करो तो अमृत निकले, तब तुम उसे पीओ तो अमर हो सकते हो। इस लाभ को विचार देवों ने वैसा ही करना आरम्भ कर, औषधि वनस्पति आदि को तो समुद्र में डाल मन्दर को रई बनाने के विचार से उठाने लगे और उसके द्वारा समुद्र का मथन कर अतीव दुष्कर समझ कर फिर भगवान् से जा कहने लगे कि महाराज! यह असाध्य कर्म कैसे पूर्ण हो सकता है? आप कृपा कर इस काम में सहायता करें तो समुद्र का मथन कर हम अमृत पा सकते हैं, अन्यथा नहीं। भगवान् बोले कि देवताओ! यदि इस काम को सिद्ध किया चाहो तो सब से प्रथम दानवों से मिलो और एकता करो और दोनों आधा २ अमृत बांटने की प्रतिज्ञा कर मिल कर समुद्र का मथन करो तो मैं भी तुम्हारी सहायता करूँगा। दानव बल-शाली हैं, परिश्रम से दुष्कर भी काम वे शीघ्र कर लेंगे, इस

कारण उनसे मेल करना तुम्हें लाभदायक होगा। अमृत निकल आने के पीछे मैं तुम्हें ही वह कोई न कोई युक्ति से दिला दूंगा। यह सुन देवताओं ने दानवों को बुलाया और समझा बुझा कर मेल किया। मेल कर एक ही कर सब के सब उस मंदर को उठा लाये और रई बना लिया। शेष नाग की नेता बना समुद्र मथ कर अमृत निकाल लिया।

[यह कथा भागवत के अष्टम स्कन्ध में है]

एकता से दुष्कर भी काम सहज में हो सकते हैं। एकता उन्नति का प्रधान कारण है। इस कारण सब पुरुषों को एक हो कर एक उद्देश्य रख कर परस्पर प्रेम व्यवहार करते रहना चाहिये।

विद्वज्जनों के मन-मोद के लिये,
विद्यार्थियों के परिबोध के लिये।
विद्वान् हरि श्री कविराज राज ने,
रची सुशिक्षा मय रत्न मालिका ॥

इस पुस्तक के लिखने का यही प्रयोजन है कि हिन्दू विद्यार्थी गण (जिनकी मातृ भाषा हिन्दी है) को अपने आदर्श पूर्व पुरुषों का चरित जान पड़े और धार्मिक शिक्षा भी प्राप्त हो। तथा सर्व साधारण हिन्दी प्रेमी जनों को जो कुछ हिन्दी पढ़ना लिखना सीख कर ही और व्यापारादि उद्योग में लग जाते हैं,

धार्मिक-ऐतिहासिक कथाओं का अनुभव हो और साथ ही मधुर रीति से उपदेश भी अपने धर्म, कर्म का मिलता रहे तथा भारत, भागवत, रामायणादि धर्म ग्रन्थों की इन रोचक पद्यों और कहानियों से रुचि पा कर उन ग्रन्थों को पढ़ने में प्रेम उत्पन्न हो और संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान लोगों के तो मनोविनोद के ही यह हेतु हो सकती है। इस पुस्तक में धर्म के आदर्श ग्रन्थों की अच्छी २ शिक्षाओं को संग्रह कर पद्यों में रच कर मनोहर बनाया गया है और वे शिक्षाएँ १०६ ली गई हैं इस कारण इसका नाम "शिक्षा रत्नावली" रक्खा है।

पढ़े इसे जो नर सावधान हो,
तथा इसी के अनुसार भी चले।
तो वे यशस्वी व्यवहार दक्ष हो,
संसार में सभ्य विवेकवान् बनें ॥

इस पुस्तक को जो विद्यार्थी व कोई भी पुरुष सावधान हो पढ़ कर इस पर विचार कर इसके अनुसार ही व्यवहार करने लग जाँय तो संसार में व्यवहार चतुर हो और ज्ञानवान होवे तथा यश वाले बनें और सभ्यता तो उस पुरुष में अवश्य आ जावे इसमें सन्देह नहीं।

जो विद्यार्थी मन्द तथा पढ़ने में आलसी भी हों, उन्हें पाठक पण्डित लोग यदि इस पुस्तक से शिक्षा देवें और इसके

पद्य समझा कर नीचे लिखी कहानियां कहें तो मेरा अनुभव है कि वह बालक शीघ्र ही पढ़ने लिखने का प्रेमी हो और सहज में उसे उच्च कोटि को बातों का परिज्ञान हो जावे, कि इस पुस्तक में उन्हीं बातों का संग्रह किया है,जो अच्छा प्रभाव डालने वाली हैं और जो नीति तथा धर्म के विरुद्ध नहीं हैं। इस कारण इसका पढ़ाना-पढ़ाना वर्तमान समय की प्रगति को देखते हुये धर्म व आदर्श पुरुषों के कर्तव्य के ज्ञान के साथ २ सभ्य बनने बनाने का सहज और सुगम उपाय है।

॥ इति शुभम् ॥